०२००७

हमारी कॉन्फरन्स की ओर से इन पाठावलियों को प्रगट करने
ा एक हेतु यह भी है कि कॉन्फरन्स समस्त समाज की प्रतिनिधि संस्था
ोने से उसकी ओर से ऐसी पाठावलियाँ प्रगट होने पर वह समस्त हिन्द
े सर्व गुजराती और हिन्दी भाषा-भाषी हमारी जैन स्कूलों, छात्रा-
यों और जैन पाठशालाओं में पाठ्यक्रम के धोरण से चलाई जाय तो
शिक्षण का क्रम एक समान रहे और उसकी उच्च कक्षाओं की परी-
ाओं का धोरण भी एक समान रह सके। इस प्रकार अखिल हिन्द के
ोरण से, एक मध्यस्थ शिक्षण बोर्ड की व्यवस्था भी की जा सके। इन
ाठावलीओं को हमारी सभी शालाएँ पाठ्यक्रम के तौर पर स्वीकार
रेंगी ऐसी हमारी अपेक्षा है।

जैन-धर्म के मूल तत्त्व जैसे कि सत्यनिष्ठा, अहिंसा का सर्वांगी
चरण, भ्रातृभाव, मानवता, परिग्रह परिमाण आदि का विशिष्ट प्रकार
े सादी, सरल, मधुर और बालयोग्य भाषा में अवतरित करने का इसमें
यत्न किया गया है। आशा है कि समाज इन पाठमालाओं को अवश्य
अपनायेंगी।

इन पाठावली को तैयार करने में हमारे समाज के जिन जिन
ुनिराजों ने तथा श्रावकों ने सहायता दी है इस के लिए हम उनके
आभारी हैं। पूज्यश्री आत्मारामजी म० सा० पं० मुनिश्री पूनमचन्दजी
० सा०, पं० मुनिश्री समानन्दजी (छोटेलालजी) म० सा०, प्रो. अ. स.
ोपाणी M. A. ph. D., श्री रतनलालजी दोसी, श्री मानसंग भाई
ंपराजी भाई, पं० नटवरलाल के. शाह आदि का सहयोग अधिक मिला है।

श्री धीरजलाल भाई के० तुरखिया ने धार्मिक शिक्षण समिति के
मंत्री पद को उत्तरदायित्वपूर्ण निभा करके पाठ्य-पुस्तकों का सम्पूर्ण
कार्य कराया है, यह उल्लेखनीय है।

इस पाठावली का प्रकाशन तथा उसके खर्च का आधा हिस्सा

स्थानक जैन गुरुकुल शिक्षण संघ ने उदारता, कॉन्फरन्स के प्रति जो अनुराग दिखलाया है उसके लिए मंत्री गण उनका अभिनन्दन करते हैं।

हमारी कॉन्फरन्स ने पंजाब-सिंध निराश्रित राहत कार्य श्राविकाश्रम की स्थापना, सर्वसंघ योजना, एक प्रतिक्रमण, एक संवत्सरी, व्याख्यान और एक समय की योजना आदि समाजोन्नति और धार्मिकोन्नति के कार्यों को करके आज तक समाज की जो यत्किंचित् सेवा की है उसमें इस पाठावली के प्रकाशन को सम्मिलित करके कुछ संतोष का अनुभव करती है, और ऐसे ही समाज सेवा के विशेष कार्य समाज के सहकार के द्वारा करने की उम्मीद रखती है। किं बहुना ?

मंत्रीगण, श्री श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेन्स ऑफिस

टी. जी. शाह बिल्डिंग, पायधुनी, बम्बई नं. ३

पाठकों और शिक्षकों से

*

'जैन पाठावली' अर्थात् जैन नाम से पहिचाने जाने वाले समुदाय को दिया जाने वाला शिक्षण। इस पाठ्यक्रम में बच्चों को केन्द्रस्थान म रक्खा है। प्रान्तीय भाषा से देखा जाय तो चतुर्थ कक्षा में प्रविष्ट हुआ बालक इस पाठ्यक्रम के अनुसार जैन पाठावली के प्रथम वर्ग के योग्य समझा जायगा। इसी दृष्टि से सात वर्ष तक का यह पाठ्यक्रम मैट्रीक तक की योग्यता वाला विद्यार्थी कर सकेगा। इस बात को ध्यान में रखकर यह योजना की गई है। फिर भी अपवाद का स्थान तो है ही। बालक का ग्राहक शक्ति और संस्कार किस प्रकार के हैं? ये सब बातें देखकर शिक्षक स्वयमेव इस अपवाद का सदुपयोग कर सकेंगे।

शिक्षकों पर शिक्षण की सफलता का महत्त्वपूर्ण आधार है उसमें भी इस संपादन के पीछे तो शिक्षकों की योग्यता पर खास आधार रक्खा गया है ऐसा कहना अनुचित न होगा।

हमारी इच्छा तो यह थी कि शिक्षकों का तालीम वर्ग चलाकर, बाद में ही ऐसे शिक्षकों के हाथ में यह जैन पाठावली दी जाय। अभी तक यह इच्छा तो है ही फिर भी हमें इतना स्थाय अवकाश निकालने में जो मुसीबत है उसे पाठक स्वयंसरलता से समझ सकेंगे। कदाचित् एकाध मास जितना समय उस वर्ग के पीछे दिया जाय तो भी उन सब शिक्षकों के लिए, वे एक महीने तक इस प्रकार शिक्षण लें, उसका सारा खर्च और व्यवस्था की सम्पूर्ण जवाबदारी लेने कोई तैयार होगा या नहीं

यह भी एक प्रश्न है। इसलिए इस सूचना से शिक्षकों को जो थोड़ा बहुत कहना है, कह दें, इससे थोड़ा-सा तो काम आएगा ही ऐसी अपेक्षा है।

(१) जैनधर्म सांप्रदायिक धर्म ही नहीं है। विश्व के अनेक धर्म क्यों स्थिर हैं ? किसलिए पैदा हुए और उनका अंतिम ध्येय क्या है ? ये सब बातें तटस्थ होकर विचारना और अनेकान्त दृष्टि से न्याय तोलन करना इसी में ही जैनदर्शन का महत्त्व है। इस पाठ्यक्रम के पीछे यह विचार-श्रेणी प्रधानतया होने से इसमें जो सांप्रदायिक बातें रक्खी हैं, वे भी इस प्रकार रक्खी गई हैं जिसमें संकुचितता की बू तक न आवे।

संसार में धर्म के नाम से होने वाले अनेक अनिष्ट और उन्हें दूर करने के उपाय का ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करना यह मुख्यरूप से शिक्षकों की योग्यता पर अवलंबित है। इस पाठ्यक्रम के पुस्तकों में से इस प्रकार का दोहन करके बालक, बालिकाओं को शिक्षक भाई व बहिनें परोसेंगे ऐसी खास अपेक्षा है।

(२) जो पाठ देने का हो उस पाठ को देने से पूर्व शिक्षक, शिक्षिका खूब पढ़कर विचार करे ऐसी सूचना है। उसमें भी तत्त्वविभाग, संवाद इतिहास जैसे विषयों के लिए तो यह सूचना अनिवार्यरूप से लागू होती है। पुण्य और पाप की व्याख्या अभी जिस ढंग से की जाती है उस तरीके का इसमें संशोधन है। इसी प्रकार समकित, तप त्याग ज्ञान, ध्यान ऐसे अनेक विषयों में प्रसंगोचित जो विवेचन किया है उसमें जैनागमों को सन्मुख रखने पर भी कितनों को नूतनता दिखेगी। ऐसा जिन्हें मालूम होवे उन्हें सहसा अभिप्राय न बांधकर विशाल दृष्टि से विचारना अथवा पूछना चाहिये।

(३) पाठ में आने वाले पद्य और काव्यविभाग के काव्य बालकों को मौखिक कराने के हैं। उनके अर्थ व भावार्थ अच्छी तरह से चाहिये।

(४) कथा साहित्य में परम्परा से चले आते रूढ़ प्रसंगों में नव-दृष्टि दिखे तो उसके लिए भी उपरोक्त दृष्टि रखने की प्रार्थना है। कथा-कहानी बालक अपनी भाषा में कह सकें वैसा अभ्यास कराना चाहियें।

(५) विभिन्न भावना के गहरे आशय के स्थान हैं वहाँ स्पष्टीकरण करने के लिए अधिक विस्तार किया गया होगा। अध्यापक विस्तार और भाव से जितना समझा सके उतना विद्यार्थियों को समझावे। फिर भी पूरा न समझा सकें वहाँ शिक्षक निशान करके ऐसी प्रश्नोत्तरी तैयार करें अथवा वैसा स्थान बतलावे। उस पर से नई आवृत्ति में संशोधन हो सकेगा।

सामान्यदृष्टि से दे तो जैनधर्म ईश्वर को जगत्कर्त्ता नहीं मानता तथापि प्रार्थना या प्रेमभक्ति में निर्दोषभाव ईश्वरतत्त्व बताने वाले काव्य और बातें कहीं २ दृष्टिगोचर होगी। ऐसे शब्द जहाँ दिखाई दें वहाँ पर अपेक्षावाद विचारना। निषेध करने वाले जैन तत्त्वज्ञान में वहाँ चमत्कार से दिव्यमान दिखाई देगा।

जैनसूत्र समकित प्राप्त होने के बाद की भूमिका मुख्यतया बताते हैं, इसलिए उसके पूर्व की भूमिकाओं के विचार की पूर्ति करनी ही पड़ेगी।

इतने सूचन पर से और भी जो कुछ करने का रहता हो वह अध्यापक स्वयमेव कर सकेंगे।

माता-पिता और समाज से भी ऐसी आशा की जाती है कि वे इस पाठ्यक्रम का सत्य पान करें। कोई भी बात समझ में न आवे, अपूर्ण मालूम हो अथवा सचमुच ही भूलभरी मालूम हो तो भी जाहिर में चर्चा करने के पूर्व कॉन्फरन्स का और उसके कार्य कर्त्ताओं का ध्यान

फिर ही जाहिर में चर्चा करें। इससे ऐसे प्रश्नों को लाभ ही होगा।

श्वे. साधुमार्गीय,, (स्थानकवासी) जैन-समाज और उनकी शाखाओं के सिवाय इस पाठ्यक्रम का उपयोग करें मंदिरमार्गी और दिगम्बर समाज भी करे यह इच्छनीय है।

संतबाल

मन्त्री, श्री धार्मिक शिक्षण समिति राजकोट ता. १४-८-४६

प्रकाशक की ओर से

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी और श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेन्स का धार्मिक शिक्षण प्रचार कार्य में एक समान धोरण होने से कॉन्फरेन्स द्वारा तैयार कराई गई जैन पाठावली को बोर्ड ने अपने पाठ्यक्रम में स्थान देने का निश्चय किया। कॉन्फरेन्स ने भी पाथर्डी बोर्ड को अपनी मान्यता प्रदान करते हुए पाठावली के सातों भागों के हिन्दी और गुजराती संस्करणों का प्रकाशन करने की सम्मति बोर्ड के पुस्तक प्रकाशन विभाग को देकर एक बडी उदारता प्रकट की है।

तदनुसार जैन पाठावली भाग ५ का द्वितीय संस्करण प्रकाशित करते हुवे हमें महान प्रमोद हो रहा है।

मंत्री-पुस्तक प्रकाशन विभाग

श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी (अहमदनगर)

जैन पाठावली

(पाँचवाँ भाग)

प्राकृत--प्रबोध

(प्राकृत भाषा का बोध कराने वाला प्राकृत शब्द 'प्रकृति'
ब्द से बना हुआ। है। 'प्रकृति' का एक अर्थ स्वभाव भी होता
। इसलिए जो भाषा स्वाभाविक है वह 'प्राकृत' शब्द से मह-
नी जाती है। अर्थात् मनुष्य को जन्म से प्राप्त बोल-चाल की
ाभाविक भाषा प्राकृत भाषा है और वह लोकभाषा है। इस
ोकभाषा में ही भ० महावीर ने धर्मोपदेश दिया था। आजकल
। प्रचलित लोकभाषाओं का मूल भी इस प्राकृत भाषा में ही
हा हुआ है। म० बुद्ध ने भी पाली-प्राकृत भाषा के समान
ोकभाषा में ही धर्मोपदेश दिया था। संस्कृत और अन्य भाषाओं
ी अपेक्षा प्राकृत भाषा विशेष व्यापक और मधुर है। इसका
ारण इसकी सरलता है।)

प्राकृत में स्वरों का प्रयोग

१ प्राकृत में अ, इ, उ, (ह्रस्व) तथा आ, ई, ऊ, ए, ओ
दीर्घ)-केवल इतने ही स्वरों का प्रयोग होता है। ऋ, ॠ, ऌ,
ऐ और औ का प्रयोग प्राकृत भाषा में प्रायः नहीं होता है।

(इ) समास वाले शब्दों में प्रारम्भिक शब्द के 'ऋ' के स्थान पर 'उ' का ही प्रयोग होता है। जैसे मातृष्वसा का माउ-सिया (मौसी)

८ प्राकृत में क्लृप्त के बदले 'किलित्त' और 'क्लृन्न' के स्थान में 'किलिन्न' हो जाता है।

९ प्राकृत में 'ऐ' के स्थान पर 'ए' और 'औ' के स्थान पर 'ओ' का प्रयोग होता है। जैसे वैद्य का वेज्ज; यौवन का जोव्वण।

प्राकृत में व्यञ्जनों का प्रयोग

१, प्राकृत में एक ही शब्द में आये हुए असंयुक्त क, ग, च, ज, त द, प, ब, य और व का प्रयोग नहीं होता है अर्थात् उसका प्रायः लोप होता है। लोप होने पर बचा हुआ स्वर 'अ' और 'आ' के बाद आया हो तो प्रायः उसके स्थान पर क्रमशः य और या का प्रयोग होता है। जैसे:-

नगर का नयर, प्रजा का पया और शचि का सइ,

२-ख घ, थ, ध, फ और भ-ये व्यञ्जन क्रमशः क्+ह्, ग्+ह्, त्+ह्, द्+ह्, प्+ह् और ब+ह् से बने हैं; परन्तु प्राकृत भाषा के अङ्क २ के नियमानुसार विजातीय संयुक्त व्यञ्जनों का प्रयोग नहीं होता हैं। इसलिए शब्द को आदि में नहीं आये हों और असंयुक्त हों ऐसे सब शब्दों के आदि अक्षर का प्रयोग नहीं होता है; अर्थात् उन अक्षरों के स्थान पर सिर्फ ह् का ही प्रयोग होता है। जैसे:-मुख का मुह, मेघ का मेह, नाथ का नाह, बधिर का बहिर, सफल का सहल और शोभा का सोहा।

३. शब्द में आये हुए असंयुक्त ट का ड, ठ का ढ, ड
ल, न का ण, प का व, फ का भ और ब का व होता है।
पट का पड, पीठ का पीढ, गुड का गुल, गमन का गमण,
का कूव, रेफ का रेभ और अलाबु का अलावु।

४. शब्द की आदि में न का ण विकल्प से होता
जैसे—नगर का नयर और णयर दोनों होता है।

५. शब्द की आदि के 'य' का 'ज' होता है।
का जम।

६. अनुस्वार के बाद के 'ह' का 'घ' होता है। जैसे—
का सिंघ।

७.(अ) प्राकृत में संयुक्त अक्षरों का निम्न आदेश

क्ष, ष्क और स्क के स्थान पर 'ख'[1] होता है।

त्य	के	,, ,,	'च'[2]	,,
द्य, र्य और य्य	के	,, ,,	ज	,,
ध्य और ह्य	के	,, ,,	झ	,,
र्त	के	,, ,,	ट[3]	,,
स्त	के	,, ,,	थ[4]	,,
ष्प और स्प	के	,, ,,	फ	,,
ह्न ,, ह्म	के	,, ,,	ण	,,

१ कितने शब्दों में क्ष का छ भी होता है। जैसे क्षण का खण और छण, कितनेक में क्ष का झ भी होता है। जैसे—क्षीण का झीण

२ अपवाद—चैत्य का चेइय।

३ अपवाद—मुहूर्त।

४ अपवाद—समस्त का समत्त।

ष्म के स्थान पर म होता है।

ष्म „ स्म के „ „ प „

ष्ट „ „ के „ „ ठ „

जैसे—क्षय का खय, पुष्कर का पोक्खर, स्कंध का खंध, स्थाग का थाय, मद्य का मज्ज कार्य का कज्ज, शय्या का सेज्जा, ध्यान का झाण, गुह्य का गुज्झ, आर्त्त का अट्ट, स्तुति का थुई, बाष्प का बप्फ, स्पंदन का फंदण, निम्न का निण्ण, ज्ञान का णाण, जन्म जम्म; कुड्मल का कुंपल, रुक्मिणी का रुप्पिणी और ओष्ठ का ओट्ठ होता है।

(आ) उपर्युक्त क्ष ष्क, स्क, आदि अक्षर जो शब्द के बीच में आये हों और उनके बाद में दीर्घस्वर या अनुस्वार न आये हों तो उसका द्वित्व (द्विरुक्ति) होता है और आठवें नियम के अनुसार फेरफार होता है। जैसे--मक्षिका का मक्खिया, उपाध्याय का उवज्झाय, गुह्य का गुज्झ, वर्त्तो का वट्टो, विस्तर का वित्थर, पुष्प का पुप्फ, बृहस्पति का बिहप्फइ, निम्न का निण्ण, विज्ञान का विण्णाण, मन्मथ का बम्मह, कुड्मल का कुंपल, रुक्मिणी का रुप्पिणी और काष्ठ का कट्ठ।

८. द्विरुक्ति वाले ख्ख, छ्छ, ठ्ठ, थ्थ, फ्फ, घ्घ, झ्झ, ड्ढ, ध्ध और म्म आदि के स्थान पर क्रमशः क्ख, च्छ, ट्ठ त्थ, प्फ, ग्घ, ज्झ, ड्ढ, द्ध और म्ह होता है।

९. प्राकृत में ग्म के स्थान में म्म का और ह्व के स्थान में म्भ का व्यवहार विकल्प से होता है। जैसे--युग्म का जुम्म और जुग्ग; विह्वल का विब्भल और विहल।

५-उष्ट्र का उट्ट आदि।

१०. प्राकृत में ह्रस्व के बाद आये हुए थ्य, त्स, प्स के
स्थान पर च्छ का प्रयोग होता है। जैसे—पथ्य का
अप्सरा का अच्छरा, पश्चात् का पच्छा और उत्साह का उ

११ प्राकृत में श्न, ष्ण, स्न, ह्न और क्ष्ण के स्थान
'ण्ह' होता है। जैसे—प्रश्न का पण्ह, पार्ष्णि का पण्ही, स्नात
ण्हाअ, वह्नि का वण्हि और तीक्ष्ण का तिण्ह।

१२. प्राकृत में श्म, ष्म, स्म और ह्म के स्थान पर म्ह
प्रयोग होता है। और ह्न के स्थान पर ल्ह का प्रयोग होता है।
जैसे-कुश्मान का कुम्हाण, ग्रीष्म का गिम्ह, विस्मय का विम्ह
ब्रह्मा का बम्हा और आह्लाद का आल्हाद।

१३ प्राकृत में र्य के बीच में और र्ह के बीच में इ का प्र
होता है अर्थात् र्य का 'रिय' और र्ह का 'रिह' होता है। जैसे
भार्या का भारिया, गर्हा का गरिहा।

१४. संयुक्त ल के पहिले 'इ' रक्खा जाता है। जैसे-क्ले
का किलेस होता है।

१५. ह्य का म्ह होता है। जैसे—गुह्य का गुम्ह।

१६. तन्वी, बह्वी, लघ्वी और गुर्वी जैसे स्त्रीलिंगी
में 'व' के पहिले 'उ' का प्रयोग होता है। जैसे- तन्वी का तणुवी
बह्वी का बहुवी इत्यादि।

१६. शब्द के अन्त्य व्यञ्जन का प्राकृत में लोप हो जाता है।
जैसे-तमस् का तम, तावत् का ताव, यावत् का जाव इत्यादि।

अपवादः—(१) शरद् का सरओ, भिषज् का भिसओ इत्यादि। आयुष् का आउसो और आऊ; धनुष् का धणुह और धणु।

(२) स्त्रीलिंगी शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन का आ अथवा या होता है। जैसे—सरित् का सरिआ और सरिया।

अपवादः-विद्युत् का विज्जु, क्षुध् का छुहा, दिक् का दिसा' प्रावृष् का पाउस, अप्सरस् का अच्छरस् और अच्छरा; तथा ककुभ् का कउहा।

(३) रकारान्त स्त्रीलिंगी शब्द के अन्त्य 'र' का 'रा' होता है। जैसे—गिर् का गिरा।

१८. संयुक्त व्यञ्जन से पहिले क्, ग्, ट्, ड्, त्, द्, प्, श्, ष्, स्, जिह्वामूलीय (≍) तथा उपध्मानीय ( )( ) का प्राकृत में लोप होता है और बाकी शेष व्यञ्जन जो शब्द की आदि में न हो तो उसको द्विरुक्ति होती है। तत्पश्चात् नियम ८ के अनुसार योग्य फेरफार होता है। जैसे—भुक्त का भुत्त, दुग्ध का दुद्ध, षट्पद् का छप्पअ, निश्चल का निच्चल, तुष्ट का तुट्ठ, निस्पृह का निप्फह, स्तव का तव।

१९. संयुक्त व्यञ्जन में पीछे आये हुए म्, न, और य् का लोप हो जाता है। और बचे हुए व्यञ्जन जो शब्द के आरम्भ में न हों तो द्विरुक्ति (द्वित्व) पाते हैं। जैसे—युग्म का जुग्ग, नग्न का नग्ग, श्यामा का सामा इत्यादि।

२०. संयुक्त अक्षर में पहिले या पीछे रहे हुए ल्, ब्, व् और र का लोप हो जाता है और बाकी रहा हुआ व्यञ्जन जो आरंभ में न हो तो उसका द्वित्व होता है। जैसे—उल्का का उक्का, श्लक्ष्ण का सण्ह, शब्द का सद्द, उल्बण का उल्लण, पक्व

५. क्रिया पद के अन्त के स्वर की प्रायः सन्धि नहीं होती है। जैसे-होइ + इह = होइ इह (भवति+इह)।

६. व्यंजन का लोप होने पर बचे हुए स्वर की प्रायः सन्धि नहीं होती है। जैसे—निसा+ यर = निसा अर (निशाकर अथवा निशाचरः)।

व्यञ्जन-सन्धि

१. 'अ' के पीछे आये हुए विसर्ग का पूर्व के अ के साथ 'ओ' होता है। जैसे-अग्रत. का अग्गओ।

२. पदान्त 'म्' का अनुस्वार हो जाता है; परन्तु म् के बाद स्वर आये तब अनुस्वार विकल्प से होता है। जैसे-गिरिम् का गिरिं, उसमम्+अजियं = उसमं अजियं अथवा उसममजियं (ऋषमम्+अजितम्),

३. ङ्, ञ् ण्, और न के स्थान पर उसके पीछे व्यंजन आने पर सर्वत्र अनुस्वार हो जाता है। जैसे-पङ्क्ति का पङ्ति या पंति, विन्ध्य का विन्झो या विंझो।

४. अनुस्वार के बाद क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग और प वर्ग के अक्षर आने पर अनुस्वार का क्रमशः ङ्, ञ, ण्, न्, म् (उसी वर्ग का अनुनासिक) विकल्प से होता है। जैसे-अङ्गण तथा अंगण।

५ कितनेक शब्दों में प्रयोगानुसार पहिले, दूसरे या तीसरे अक्षर पर अनुस्वार रखने में आता है। जैसे-(१) [illegible]
(२) मणंसी (मनस्वी), (३) अइमुंतय ([illegible]

अन्तिम दो विभागों के नाम बहुत कम हैं। ऋकारान्त पुल्लिंग शब्दों को 'अर' अथवा 'आर' अंत वाले बना कर अकारान्त जैसे रूप चलाये जाते हैं। जैसे-पितृ का पिअरो (पिता) पिअरेण (पित्रा), भर्तृ का भत्तारो (भर्ता), भत्तारेण (भर्त्रा)। प्रथमा व द्वितीया बहुवचन में,तृतीया व षष्ठी एक वचन में तथा सप्तमी बहुवचन में, अन्त्य ऋ का विकल्प से 'उ' होता है और उकारान्त शब्द के अनुसार रूपाख्यान होते हैं। सबंध दर्शक ऋकारान्त शब्दों को प्रथमा एकवचन में आकारान्त बनाया जाता है।

२. व्यञ्जनान्त नामों के रूपाख्यान दो प्रकार से होते हैं। (१) अन्त्य व्यंजन का लोप करने पर पहिले तीन विभागों में से किसी एक विभाग के स्वरान्त की तरह, जैसे—सर (सरस्) का सरो, कम्म (कर्मन्) का कम्म होता है, (२) मूल व्यंजनांत शब्द में अ या आ जोड़कर रूप बनाये जाते हैं। जैसे—शरद् का सरदो, आशीस् का आसिसा।

३. प्राकृत में द्विवचन नहीं है; परन्तु द्वित्व अर्थ को बताने के लिये निम्न लिखित शब्दों में से किसी एक को नाम के बहुवचन के पहिले लगाया जाता है।

दुण्णि, विण्णि, विण्णि, दो, दुवे, वे, बे।

४. संस्कृत नामों के रूपाख्यान तथा प्राकृत नामों के रूपाख्यान में कितना अधिक साम्य है? सो दोनों के रूपों की तुलना करने से स्पष्ट दिखेगा। कौंस ( ) में संस्कृत रूप दिये हैं उससे तुलना हो सकेगी।

अन्तिम दो विभागों के नाम बहुत कम हैं। ऋकारान्त पुल्लिंग शब्दों को 'अर' अथवा 'आर' अंत वाले बना कर अकारान्त जैसे रूप चलाये जाते हैं। जैसे–पितृ का पिअरो (पिता) पिअरेण (पित्रा), भर्तृ का भत्तारो (भर्ता), भत्तारेण (भर्त्रा)। प्रथमा व द्वितीया बहुवचन में, तृतीया व षष्ठी एक वचन में तथा सप्तमी बहुवचन में, अन्त्य ऋ का विकल्प से 'उ' होता है और उकारान्त शब्द के अनुसार रूपाख्यान होते हैं। संबंध दर्शक ऋकारान्त शब्दों को प्रथमा एकवचन में आकारान्त बनाया जाता है।

२. व्यञ्जनान्त नामों के रूपाख्यान दो प्रकार से होते हैं। (१) अन्त्य व्यंजन का लोप करने पर पहिले तीन विभागों में से किसी एक विभाग के स्वरान्त की तरह, जैसे—सर (सरस्) का सरो, कम्म (कर्मन्) का कम्म होता है, (२) मूल व्यंजनांत शब्द में अ या आ जोड़कर रूप बनाये जाते हैं। जैसे—शरद् का सरदो, आशीस् का आसिसा।

३. प्राकृत में द्विवचन नहीं है; परन्तु द्वित्व अर्थ को बताने के लिये निम्न लिखित शब्दों में से किसी एक को नाम के बहुवचन के पहिले लगाया जाता है।

दुण्णि, विण्णि, बिण्णि, दो, दुवे, वे, बे।

४. संस्कृत नामों के रूपाख्यान तथा प्राकृत नामों के रूपाख्यान में कितना अधिक साम्य है? सो दोनों के रूपों की तुलना करने से स्पष्ट दिखेगा। कौंस ( ) में संस्कृत रूप दिये हैं उससे तुलना हो सकेगी।

इकारान्त पुंल्लिंग इसि (ऋषि) शब्द

वि०	एकवचन	बहुवचन
	इसी (ऋषिः)	इसओ-उ, इसिणो, इसी (ऋषयः)
	इसिं (ऋषिम्)	इसीणो, इसी (ऋषीन्)
	इसीणा (ऋषिणा)	इसीहि, इसीहिँ हिं (ऋषिभिः)
	इसये इसिस्स, इसिणो (ऋषये)	इसीण-इसीणं (ऋषीभ्यः)
	इसिणो इसीओ इसीउ.	इसिणो, इसीओ, इसीउ.
	इसीहिंतो, इसिणो (ऋषेः)	इसीहिंतो. इसीसुंतो (ऋषिभ्यः)
	इसीणो, इसिस्स, (ऋषेः)	इसीण–इसीण (ऋषीणाम्)
	इसिमि. इसिम्मि (ऋषौ)	इसीसु, इसीसुं (ऋषिषु)
०	इसि, इसी (ऋषे)	इसओ–उ, इसिणो, इसी (ऋषयः)

उकारान्त पुंल्लिंग भाणु शब्द

भाणू (भानुः)	भाणवो, भाणओ-उ, भाणुणो, भाणू
भाणुं (भानुम्)	भाणुणो, भाणू (भानून्)

से ८ (सं.) तक इसि (इकारान्त) वत्

इकारान्त नपुंसक लिंग 'दहि' (दधि) शब्द

दहिं (दधि)	दहीणि, दहीइ-इँ (दधीनि)
" "	" " " "

से ७ तक पुंल्लिंग इकारान्त (इसि) वत्

० दहि (दधि)	दहीणि, दहीइं–इँ (दधीनि)

ऋकारान्त पुंल्लिंग 'पिउ' (पितृ) शब्द

	एक वचन	बहुवचन
१०	पिया (पिता)	पियओ-उ, पियरो, पिऊणो, पिऊ, (पितरः)

अनियमित रूप राय (राजन्) शब्द

२० एकवचन	बहुवचन
राया	राइणो, रायाणो
राइणं	राइणो, रायाणो, रण्णो
राइणा, रण्णा	राईहि, राईहिं, राईहिँ
राइणो, रण्णो	राईण, राईणं, राइण-णं,
राइणो, रण्णो	राईत्तो, राईओ-उ, राईहि, राइत्तो राईहिन्तो,
राइणो, रण्णो	राईण, राईणं, राइण-णं
राइंसि, राइम्मि	राईसु, राईसुं
हे राया !	राइणो, रायाणो,

अप्प (आत्मन्) शब्द

अप्पा	अप्पाणो
अप्पाणं	अप्पाणो
अप्पणिआ, अप्पणइया	अप्पेहि, अप्पेहिं, अप्पेहिँ
अप्पणा	
अप्पाणो	अप्पिण-णं
अप्पाणो	अप्पत्तो, अप्पासो
चतुर्थी वत्	

पूस (पूषन्) शब्द

पूसा	पूसाणो
पूसिणं	,,
पूसणा	पूसहि, पूसहिं, पूसहिँ

जम्हा (यस्मात्) जत्तो,	जत्तो, जाओ, जाउ, जाहि,
जाओ, जाउ, जा,	जेहि, जाहिन्तो, जेहिंतो
जाहि, जाहितो	जासुंतो जेसुंतो (येभ्यः)
जस्स, जास (यस्य)	जेसिं जाण, जाणं (येषाम्)
जंसि, जम्सि, जाहिं,	जेसु, जेसुं (येषु)
जम्मि, जत्थ (यस्मिन्, यत्र)	

जाहे, जाला, जइआ (यदा) ये तीन रूप यदा (जब) के अर्थ आते हैं।

नपुंसक लिंग ज (यत्) के रूप

जं (यत्)	जाणि, जाइं, जाइँ (यानि)
,, ,,	,, ,, ,, ,,

शेष पुल्लिंग 'ज' यत्

पुल्लिंग त, ण (तत्) के रूप

स, से (सः)	ते, णे (ते)
तं, णं (तम्)	ते, ता (तान्)
तेण, तेणं, तिणा णेणं,	तेहि-हिं-हिँ; णेहि-हिं-हिँ;
णेण (तेन)	(तैः)
तस्स, तास (तस्मै)	सिं, तास, तेसिं, ताण, ताणं
	णेसिं, णाण, णाणं (तेभ्यः)
त्तो, तत्तो, ताओ, ताउ,	तत्तो, ताओ, ताउ, ताहि,
तम्हा, ताहि, ताहितो,	तेहि, ताहिन्तो, तेहिन्तो,
ता. णत्तो, णाओ,	तासुन्तो, तेसुन्तो, णत्तो,
णाउ, णाहि णाहितो,	णाओ, णाउ. णाहि, णेहि,
णा (तस्मात्)	णाहितो, णेहितो, णासुन्तो,
	णेसुन्तो, (तेभ्यः)

३	सव्वेण, सव्वेणं (सर्वेण)	सव्वेहि-हिं-हिँ (सर्वैः)
४	सव्वस्स (सर्वस्मै)	सव्वेसिं, सव्वाहं + सव्वाण, सव्वाणं (सर्वेभ्यः)
५	सव्वत्तो, सव्वाओ, सव्वाउ, सव्वा, सव्वाहि, सव्वाहितो, सव्वहा (सर्वस्मात्)	सव्वत्तो, सव्वाओ, सव्वाउ, सव्वाहि, सव्वेहि, सव्वाहितो सव्वेहितो, सव्वासुंतो, सव्वेसुन्तो (सर्वेभ्यः)
६	सव्वस्स (सर्वस्य)	सव्वेसिं, सव्वाहं + सव्वाण, सव्वाण (सर्वेषाम्)
७	सव्वंसि, सव्वासि (सर्वस्मिन्) सव्वत्थ (सर्वत्र)	सव्वेसु, सव्वेसुं (सर्वेषु)

+ इस निशानी वाले रूप का प्रयोग क्वचित् होता है।

नपुंसक लिंग 'सव्व' के रूप

१	सव्वं (सर्वम्)	सव्वाणि, सव्वाइं-इँ (सर्वाणि
	" "	" " " "

३ से सप्तमी तक के रूप पुंलिंगवत्

पुंलिंग ज (यत्) के रूप

वि०	एकवचन	बहुवचन
१	जे, जो (यः)	जे (ये)
२	जं (यम्)	जे, जा, (यान्)
३	जेण, जेणं, जिणा (येन)	जेहि, जेहिं, जेहिँ (यैः)
४	जस्स, जास (यस्मै)	जेसिं, जाण, जाणं (येभ्यः)

जम्हा (यस्मात्) जत्तो,	जत्तो, जाओ, जाउ, जाहि,
जाओ, जाउ, जा,	जेहि, जाहिन्तो, जेहिंतो
जाहि, जाहितो	जासुंतो जेसुंतो (येभ्यः)
जस्स, जास (यस्य)	जेसि जाण, जाणं (येषाम्)
जंसि, जस्सि, जाहि,	जेसु, जेसुं (येषु)
जम्मि, जत्थ (यस्मिन्, यत्र)	

जाहे, जाला, जइआ (यदा) ये तीन रूप यदा (जब) के अर्थ आते हैं।

नपुंसक लिंग ज (यत्) के रूप

जं (यत्)	जाणि, जाइं, जाइँ (यानि)
,, ,,	,, ,, ,, ,,

शेष पुल्लिग 'ज' वत्

पुलिग त, ण (तत्) के रूप

स, से (सः)	ते, णे (ते)
तं, णं (तम्)	ते, ता (तान्)
तेण, तेणं, तिणा णेणं,	तेहि-हिं-हिँ; णेहि-हिं-हिँ;
णेण (तेन)	(तैः)
तस्स, तास (तस्मै)	सि, तास, तेसिं, ताण, ताणं
	णेसिं, णाण, णाणं (तेभ्यः)
त्तो, तत्तो, ताओ, ताउ,	तत्तो, ताओ, ताउ, ताहि,
तम्हा, ताहि, ताहितो,	तेहि, ताहिन्तो, तेहिन्तो,
ता. णत्तो, णाओ,	तासुन्तो, तेसुन्तो, णत्तो,
णाउ, णाहि. णाहितो,	णाओ, णाउ. णाहि, णेहि,
णा (तस्मात्)	णाहितो, णेहितो, णासुन्तो,
	णेसुन्तो, (तेभ्यः)

६	चतुर्थी वत् (तस्य)	चतुर्थीवत् (तेषाम्)
७	तसि, तांसि, तहि तम्मि, तत्थ ताहे, ताला, तइआ णसि, णांसि, णहि, णम्मि, णत्थ, (तस्मिन्)	तेसु, तेसुं णेसु, णेसुं (ते

नपुंसक लिंग 'त' (तद्)

१-२	तं, णं (तत्)	ताणि, ताइं, ताइँ, (तानि) णाणि, णाइं, णाइँ
	शेष पुलिंग वत्	

पुलिंग 'क' (किम्)

वि०	एकवचन	बहुवचन
१	के, को (कः)	के (के)
२	कं (कम्)	के, का (कान्)
३	केण, केणं, किणा (केन)	केहि, केहिं, केहिँ (कैः)
४	कस्स, कास (कस्मै)	कास, केसिं (केभ्यः)
		काण, काणं
५	कम्हा (कस्मात्) किणो,कीस, कत्तो, काओ, काउ, का, काहि, काहितो	कत्तो, काओ, काउ काहि,केहि,काहितो,के कासुन्तो, केसुन्तो, (केभ्‍
६	चतुर्थी वत् (कस्य)	चतुर्थी वत् (केषाम्)
७	कंसि, कांसि, कहिं, कम्मि, कत्थ, काहे, काला, कइआ, (कस्मिन्) (कदा)	केसु, केसुं (केषु)

नपुंसक लिंग 'क' (किम्)

किं (किम्) शेष पुंलिंगवत्	काणि, काइं, काइँ (कानि)

पुंलिंग 'इम' (इदम्)

अयं, इमो, इमे (अयम्)	इमे (इमे)
इमं, इणं णं (इमम्)	इमे, इमा, णे, णा (इमान्)
इमेण, इमेणं, इमिणा, णेण, णेणं (अनेन)	इमेहि-हिं-हिँ, णेहि-हिं-हिँ, एहि, एहिं, एहिँ (एभिः)
इमस्स, से, अस्स (अस्य)	सिं, इमेसिं, इमाण-इमाणं.
इमत्तो, इमाओ इमाउ; इमाहि, इमाहिन्तो, इमा (अस्मात्)	इमत्तो, इमाओ-उ; इमाहि इमेहि; इमाहिन्तो, इमेहिन्तो इमासुन्तो, इमेसुन्तो (एभ्यः)
चतुर्थी वत् (अस्य)	चतुर्थी वत् (एषाम्)
इमंसि, इमस्सिं, इमम्मि इह, अस्सिं (अस्मिन्)	इमेसु, इमेसुं; एसु, एसुं (एषु)

नपुंसकलिंग 'इम' (इदम्)

२ इणं, इणमो, इदं (इदम्) शेष पुंलिंगवत्	इमाणि, इमाइं, इमाइँ (इमानि)

पुंलिंग 'एअ' (एतद्) शब्द

एकवचन	बहुवचन
एस, एसो, एसे, इणं इणमो (एषः)	एए (एते)
एअं (एतम्)	एए, एआ (एतान्)

३	एएण, एएणं, एइणा (एतेन)	एएहि, एएहिं, एएहिँ (एते
४	से, एअस्स (एतस्मै)	सिं, एएसिं, एआण, (एतेभ्यः)
५	एत्तो, एत्ताहे, एअत्तो; एआओ, एआउ, एआहि, एआहितो, एआ, (एतस्मात्)	एआओ, एआउ, एएहिन्तो-उ, एआहि ए एआसुंतो, एएसुंतो (एते
६	चतुर्थी वत्' (एतस्य)	चतुर्थी वत् (एतेषाम्
७	एत्थ, अयम्मि, ईअम्मि, एअंसि, एआसि, एआम्मि, (एतस्मिन्)	एएसु, एएसुं (एतेषु)

नपुंसक लिंग 'एअ' शब्द

१–२	एस, एअं, इणं, इणमो (एतत्) शेष पुंलिंग वत्	एआणि, एआइं, एआइँ (एतानि)

पुंलिंग 'अमु' (अस्) शब्द

१	अह, अमू, असो (असौ)	अमुणो, अमवो, अमउ; अमओ, अमू (अमी)
२	अमुं (अमुम्)	अमुणो, अमू (अमून्)

३ से षष्ठी तक 'भाणु' उकारान्त वत्

७	अयम्मि, इअम्मि अमुम्मि (अमुष्मिन्)	अमुसु अमुसुं (अमीषु)

नपुंसक लिंग 'अमु'

१–२	अह, अमुं (अदः) शेष पुंलिंग वत्	अमूइं, अमूइँ, अमूणि (अमूनि)

स्त्रीलिंग सर्वनाम के रूपाख्यान

'ता' (तद्)

	एकवचन	बहुवचन
	सा (सा)	तीआ-उ-ओ; ती, ताउ-ओ, ता (ताः)
	तं, णं (ताम्)	तीउ, तीओ, ती (ताः)
	तीअ, तीआ, तीइ, तीए; ताअ, ताइ, ताए (तया)	तीहि-हिँ-हिं; ताहि-हिँ-हिं (ताभिः)
६	से, तास, तिस्सा, तीसे, तीअ, तीआ, तीइ, तीए, ताअ, ताइ-ताए; (तस्याः)	तेसिं, ताण, ताणं (ताभ्यः) (तासाम्)
	ताअ, ताइ, ताए, तातो, ताओ, ताउ, ताहिन्तो,	ताओ, ताउ, तातो, ताहिंतो, तासुन्तो
	ताहिं, तीअ, तीआ, तीइ, तीए, ताअ, ताइ, ताए (तस्याम्)	तासु, तासुं (तासु)

जी-जा (यत्), की-का (किम्) के रूप ती-ता' वत् होते हैं।

'इमा-इमी' (इदम्)

इमीआ, इमा, इमी (इयम्)	इमीआ, इमीउ, इमीओ, इमी, इमाओ, इमाउ. (इमाः)
इमीअ, इमीआ, इमीइ, इमीए, इमाअ, इमाइ, इमाए, (अनया)	इमीहि-हिँ-हिं; इमाहि–हिँ–हिं; आहि, आहिँ, आहिं; (आभिः)

७ वीसु-सु, वेसु-सुं,

ति(त्रि) के तीनों ही लिंग के बहुवचन के रूप०

१–२ तिण्णि

४–६ तिण्ह-तिण्ह

शेष इकारान्त(इसि)वत्

चउ(चतुर) के तीनों ही लिंग के बहुवचन के रूप०

१–२ चत्तारो, चउरो, चत्तारि,

३ चउहि-हिं-हिं, चऊहि-हिं-हिं,

४–६ चउण्ह-हं,

शेष उकारान्त(भाणु)वत्

पच(पञ्च)के तीनों ही लिंग के बहुवचन के रूप०

१–२ पच

३ पचहि-हिं-हिं, पचेहि-हिं-हिं,

४–६ पचण्ह-ण्ह

शेष अकारान्त 'वीर' वत्

क्रियापद

प्राकृत में संस्कृत की तरह धातु(क्रिया) में गणों के भेद आत्मनेपद-परस्मैपद का भेद, सेट् अनिट् का भेद आदि कोई भेद-प्रभेद नहीं है। स्वरान्त और व्यञ्जनांत धातुओं के रूप बनाने में सिर्फ इतना फर्क है कि, व्यञ्जनांत धातु में 'अ' अवश्य लगता है और स्वरांत धातु में 'अ' विकल्प से लगता है। कितनेक रूप उदाहरण रूप यहाँ दिये जाते हैं।

वर्तमान काल 'हस्' धातु

पु०	एकवचन	बहुवचन
१	हसमि, हसामि, हसेमि, हसेज्ज, हसेज्जा, (हसामि)	हसमो, हसामो, हसिमो, हसेमो; हसेज्ज, हसेज्जा (हसामः)
२	हससि, हसेसि, हससे, हसेसे, हसेज्ज, हसेज्जा (हससि)	हसइत्था, हसेइत्था, हसह, हसेह, हसेज्ज, हसेज्जा, (हसथ)
३	हसइ, हसेइ, हसए, हसेए, हसेज्ज, हसेज्जा (हसति)	हसंति, हसेंति, हसंते, हसेन्ते, हसइरे, हसेइरे, हसेज्ज, हसेज्जा (हसंति)

नोट—प्रथम पुरुष बहुवचन में 'मु' और 'म' प्रत्यय भी लगाये जाते हैं। इनके रूप 'मो' प्रत्यय की तरह बनाये जाते हैं। जैसे—हसमु, हसामु, हसम, हसाम, आदि।

वर्तमान काल स्वरान्त धातु
हो (भू)

क. प्रकरण के प्रारम्भ में कहे अनुसार विकल्प से 'अ' लगा कर रूप बनाये जाते हैं। तब इस प्रकार रूप होते हैं। जैसे—होअमि, होअसि, होअइ, इत्यादि।

ख: जब अ नहीं लगाते हैं तो निम्न प्रकार रूप बनते हैं:

पु.	एकवचन	बहुवचन
१	होमि	होमो, होमु, होम
२	होसि	होइत्था, होह
३	होइ	[illegible]

भूतकाल 'हस्' धातु के रूप (व्यञ्जनांत)

हस्+ईअ = हसीअ

१-२-३ पुरुष के एकवचन और बहुवचन में व्यञ्ज
धातुओं के भूतकाल के रूप उपरोक्त प्रकार होते हैं।

भूतकाल 'हो' (भू) स्वरांत धातु के रूप

हो+सी = होसी, होअसी,
हो+ही = होही, होअही,
हो+हीअ = होहीअ, होअहीअ

१-२-३ पु. के ए. व. औ
ब. व में स्वरान्त धा
के भूतकाल के रूप इसी प्र
होते हैं।

भविष्यकाल 'हो' (भू) स्वरान्त धातुओं के रूप

पु०	एकवचन	बहुवचन
१	हसिस्सं, हसेस्सं, हसिस्सामि, हसेस्सामि, हसिहामि हसेहामि, हसिहिमि, हसेहिमि, हसिज्जा हसेज्जा०	हसिस्सामो, हसेस्स हसिहामो, हसेह हसिहामो, हसेहि हसेज्ज, हसेज्जा, इसके अतिरिक्त अंग को स्साम्, हा हिमु, स्साम, हाम, हि हिस्सा और हित्था, प्रत्यय लगाकर पूर्वव रूप बना लें। जैसे हसिस्साम्, हसेस्सा हसिहाम्, हसेहाम्, इत्यादि

हसिहिसि, हसेहिसि, हसिहिसे हसेहिसे, हसेज्जा, हसेज्जा	हसिहित्था, हसेहित्था, हसिहिह, हसेहिह, हसेज्ज, हसेज्जा
हसिहिइ, हसेहिइ, हसिहिए, हहेहिए हसेज्ज, हसेज्जा,	हसिहिंति, हसेहिंति, हसिहिंते, हसेहिंते, हसिहिइरे, हसेहिइरे, हसेज्ज, हसेज्जा०

भविष्यकाल 'हो' (भू) स्वरान्त धातु के रूप

उल्लिखित सूचनानुसार हो धातु के 'हो' और 'होअ' ऐसे अङ्ग होंगे। दोनों को हस् धातु की तरह प्रत्यय लगाकर सब प बना लेने चाहियें : जैसे–'हो' अङ्ग को 'मि' प्रत्यय लगाने र निम्न लिखित रूप बनते हैं:–

होस्सं होएस्सं, होइस्सं; होस्सामि, होहामि, होहिमि, होएस्सामि, होइहामि, होएहिमि, होइस्सामि होएहामि, होइहिमि,

इसी प्रकार 'हो' और 'होअ' अङ्ग को तीनों पुरुषों के व. तथा ब व के प्रत्यय लगाकर बना लें।

आज्ञार्थ और विध्यर्थ

हस् व्यञ्जनांत धातु के रूप

	एकवचन	बहुवचन
०	हसमु, हसामु, हसिमु, हसेमु०	हसमो, हसामो हसिमो, हसेमो०
२	हससु, हसेसु, हसेज्जसु, हसेज्जहि, हसेज्जे, हस०	हसह, हसेह,

३ हसउ, हसेउ०   हसन्तु, हसेन्तु०

'हो' स्वरान्त धातु के रूप

१	होमु	होमो
२	होसु, होहि	होह
३	होउ	होन्तु

तदुपरान्त 'हो' धातु को 'अ' प्रत्यय लगाकर 'होअ' के रूप हस् धातुवत् बना लें। जैसे–होअमु, होआमु होमु, होएमु इत्यादि।

क्रियातिपत्त्यर्थ

हस् व्यञ्जनांत धातु के रूप

पु-१-२-३ के ए. व. और बहुवचन   हसन्तो, हसमाणो. हसेज्ज, हसेज्जा

हो स्वरान्त धातु के रूप

" "   होन्तो, होमाणो, होज्ज, होज्ज

कृदन्त

'हस्' धातु का वर्तमान-कृदन्त

पु० हसन्त हसमाण, हसेन्त, हसेमाण

(पुल्लिग के रूप अकारान्त 'वीर' वत् तथा नपुंसक अकारान्त 'कुल' वत होगा।)

स्त्री० हसेन्ती, हसेन्ता, हसई, हसेई, हसमाणो, हसमाण हसेमाणा, हसेमाणी।

(अकारान्त के रूप 'माला' वत् और ईकारान्त के नति वत् होगा।)

स्वरान्त 'हो' धातु का

पुं० होंत, होमाणा, होएन्त, होअन्त, होएमाण होअमाण, (पुल्लिग के रूप अकारान्त वीरवत्, नपुंसक के 'कुल' वत्)

स्त्री० होन्ती, होन्ता, होएन्ती, होएन्ता, होअन्ती, होअन्ता, होमाणी, होमाणा, होअमाणी, होअमाणा, होएमाणी, होएमाणा, होअई, होएई, होई।

(अकारान्त के रूप 'माला' वत् और इकारान्त के 'मति' वत् होंगे)

भूत कृदन्त

भूत कृदन्त में धातु को 'अ' और 'त' प्रत्यय लगते हैं, प्रत्यय के पहिले 'अ' हो तो उसका 'इ' होता है। जैसे—हस् + अ = हस = हसिअ और हसित हू का हू+अ = हूअ, हूइअ और हूइत; तथा हू-हूत।

हेत्वर्थ कृदन्त

धातु के अंग को तुम् प्रत्यय लगाने से हेत्वर्थक कृदन्त बनता है। 'तुम्' के पहिले 'अ' हो तो उसका 'इ' या 'ए' होता है। जैसे-हसितुं, हसेतुं, हसिउ, हसेउं,

सम्बन्धक भूत कृदन्त

धातु के अंग को तुं, अ, तूण और तूण प्रत्यय लगाने से संबधक भूत कृदन्त बनता है। प्रत्यय के पहिले अ हो तो उसका इ होता है। जैसे-हसितुं, हसिअ,हसितूण, हसितूणं।

प्रेरक भेद-कर्तरि प्रयोग

१ मूल धातु को अ, ए, आव और आवे प्रत्यय लगाने से प्रेरक अंग तैयार होता है। जैसे--कर् + अ = कार, कर् + ए = कारे, कर् + आव = कराव, कर् + आवे = करावे।

२ मूल धातु के उपान्त्य इ का प्रायः ए और उ का प्रायः ओ होता है। जैसे-लिह् का लेह और दुह् का दोह।

३ उपान्त्य दीर्घ स्वर वाले धातुओं को उपरोक्त प्रेरक प्रत्ययों के उपरान्त 'अवि' प्रत्यय भी लगता है। जैसे-चूस + अवि = चूसवि, चूस् + अ = चूस चूसे, चूसाव, चूसावे।

४ प्रेरक प्रत्यय अ और ए लगते समय धातु के अ का आ होता है। जैसे—खम् +अ = खाम, कर्+अ = कार

५ भम् धातु का प्रेरक अंग 'भमाड' भी होता है। भम् धातु के अन्य प्रेरक प्रत्ययों के अतिरिक्त 'आड' प्रत्यय भी लगता है।

६ कितनेक प्रयोगों से प्रेरणा सूचक 'अवे' प्रत्यय भी लगता है। अवे प्रत्यय लगने पर उपान्त्य अ का आ होता है।

हस् धातु के प्रेरक रूप

वर्तमान काल

प्रेरकअंग	पु०	एकवचन	बहुवचन
हास--	१	हासमि, हासामि, हासेमि	हासमो, हासामो हासिमो, हासेमो
हासे--	१	हासेमि	हासेमो

हसाव-- १ हसावमि, हसावामि, हसावमो, हसावामो
हसावेमि, हसाविमो, हसावेमो

हसावे--१ हसावेमि, हसावेमो

इसी प्रकार प्र० पु० बहुवचन के अन्य प्रत्यय तथा दूसरे तीसरे पु० के सब प्रत्यय लगाकर ऊपर मुजब सब रूप बना लें। सब पु० सब वचन में हासेज्ज, हासेज्जा; हसावेज्ज, हसावेज्जा; होते हैं।

प्रेरक अंग बनाकर उसको भूतकाल और भविष्य काल के प्रत्यय लगाने से प्रेरक भूतकाल और प्रेरक भविष्य काल के रूप बनते हैं।

भावे प्रयोग और कर्माण प्रयोग

अकर्मक धातुओं का प्रयोग 'भावे' प्रयोग कहलाता है। और सकर्मक धातुओं का प्रयोग 'कर्मणि' प्रयोग कहलाता है। अर्थात् जो मुख्यतः क्रिया का ही प्रयोग बतावे वह 'भावे' प्रयोग और जो मुख्यतः कर्म को ही बतावे वह'कर्मणि'प्रयोग कहलाता है।

२ धातु का भावप्रधान या कर्मप्रधान अंग बनाने के लिए धातु को ईअ, ईय और इज्ज लगाया जाता है।

३ उक्त प्रत्यय वर्तमान काल, विध्यर्थ, आज्ञार्थ और ह्यस्तन भूतकाल में ही लगाये जातेहैं। भविष्यकाल और क्रिया-तिपत्ति आदि में कर्तरि प्रयोगवत् समझना चाहिए।

उपरोक्त प्रत्यय लगाकर धातु के भावे अथवा कर्मणि प्रयोग बनाने पर पु० बोधक प्रत्यय लगाकर रूप बना लें।

जैसे—महुरव्व.(मधुरावत्) पाडलिपुत्त पसाया ।

४ भाववाचक (पना) अर्थ से 'इमा' 'त्त' 'त्तण' प्रत्यय लगते हैं ।

जैसे—पीण + इमा = पीणिमा, देव + त्त = देवत्तं, बाल + त्तणं = बालत्तणं ।

५ 'बार' अर्थ बताने के लिये तद्धित में 'हुत्त' और 'खुत्तो' प्रत्यय लगते हैं ।

जैसे—एग + हुत्तं = एगहुत्तं, ति + हुत्तं = तिहुत्तं, ति+खुत्तो = तिखुत्तो ।

६ 'वाला' अर्थ सूचक के लिये भाववाचक नाम को "आल, आलु, इत्त, इर, इल्ल, उल्ल, मण, मंत और वंत" प्रत्यय लगते हैं ।

जैसे—रस+आल = रसालो, जहा+आल = जहालो दया+आलु = दयालू, लज्जा+आलु = लज्जालू, रेहा+इर = रेहीरो, गव्व+इर = गव्विरो, मान+इत्त = माणइत्तो, सोमा+इल्ल = सोमिल्लो, सद्द+उल्ल = सद्दुलो, धी+मंत = धीमन्तो, भत्ति+वंत = भत्तिवन्तो, धण+मण = धणमणो, सोहा + मण = सोहामणो ।

७ तद्धित में 'त्तो' पंचमी विभक्ति का अर्थ सूचक है ।

जैसे—सव्व + त्तो = सव्वत्तो, क + त्तो = कत्तो, त+त्तो = तत्तो ।

८ तद्धित में 'हिं', 'ह' और 'त्थ' प्रत्यय सप्तमी के अर्थसूचक हैं ।

जैसे--जहि, जह, जत्थ; तहि, तह, तत्थ, कहि, कह, क

९ तद्धित में स्वार्थ सूचन के लिये 'अ' इल्ल और उ
प्रत्यय का प्रयोग विकल्प से होता है।

जैसे--चंद + अ = चंदओ, पल्लव + इल्ल = पल्लवि
पल्लवो, हृत्य+उल्ल = हृत्युल्लो, हत्थो,

परिशिष्ट

(प्राकृत संयुक्ताक्षरों की तालिका)

१ क्क:-संस्कृत के त्क, क्त, क्य, क्र, र्क, क्ल, ष्क और
के स्थान पर प्राकृत में 'क्क' का प्रयोग होता है। जैसे-उ
का उक्कंठा, मुक्त = मुक्क, चाणक्य = चाणक्क, शक्र = स
अर्क = अक्क, उल्का, = उक्का, विक्लव = विक्कव और
का पक्क।

२ क्ख:--संस्कृत के त्ख, क्ष, क्ष, त्क्ष, (क्ष), ष्क,
(ष्ख), स्ख और :ख के स्थान पर प्राकृत में क्ख का प्रयोग हो
है। जैसे---उत्खण्डित = उक्खंडित, आख्या = अक्खा, यक्ष
जक्ख, उत्क्षिप्त = उक्खित्त, मुष्क = मुक्ख, प्रस्कन्ध =
अस्खलित = अक्खलिअ, दु:ख = दुक्ख

३ ग्ग.--संस्कृत के ङ्ग, द्ग, ग्न, ग्म, ग्य, ग्र, र्ग, और ल
स्थान पर प्राकृत में 'ग्ग' होता है। जैसे--खड्ग = खग्ग, मुग्ध
मुग्ग, नग्न = नग्ग, युग्म = जुग्ग, योग्य = जोग्ग, समग्र =
मार्ग = मग्ग, वल्गित = वग्गिअ.

४ ग्घ.-संस्कृत के द्घ, घ्न, घ्र और र्घ के स्थान पर
होता है। जैसे---उद्घाटित = उग्घाडिअ, विघ्न = विग्घ, शीघ्र
सिग्घ और अर्घ का अग्घ.

५ ड्ख–संस्कृत के ड्क्ष के स्थान पर प्राकृत में ड्ख होता है। जैसे–सड्क्षोभ का सड्खोह होता है।

६ च्चः-संस्कृत के त्य, त्य, र्च के स्थान पर प्राकृत में च्च होता है। जैसे–अच्युत = अच्चुअ, नित्य = णिच्च और चर्चरिका = चच्चरिआ

७ च्छः-संस्कृत में थ्य, र्छ, न्छ, क्ष, क्ष, क्ष्म, त्स, त्स्य, प्स और श्च के स्थान पर प्राकृत में च्छ होता है। जैसे–मिथ्या = मिच्छा, मूर्च्छा = मुच्छा, कृच्छ्र = किच्छ अक्षि = अच्छि, उत्क्षिप्त = उच्छित्त, लक्ष्मी = लच्छी, वत्स = वच्छ, मत्स्य = मच्छ, लिप्सा = लिच्छा, और आश्चर्य का अच्छेर होता है।

८ ज्जः-संस्कृत के ब्ज, ज्ञ, ज्र, र्ज, ज्व, द्य, र्य, और य्य के स्थान पर प्राकृत में 'ज्ज' का प्रयोग होता है। जैसे–कुब्ज = कुज्ज = खुज्ज, सर्वज्ञ = सव्वज्ज, वज्र = वज्ज, गर्जित = गज्जिअ, प्रज्वलित = पज्जलिअ, विद्या = विज्जा, कार्य = कज्ज, और शय्या का सेज्जा होता है।

९ ज्झ.–संस्कृत के ध्य तथा ह्य के स्थान पर प्राकृत में ज्झ' होता है। जैसे -मध्य = मज्झ और बाह्य का बज्झ होता है।

१० ट्ट, ट्ठ, ड्ड, ड्ढ,:–संस्कृत के र्त के स्थान पर प्राकृत में ट्ट, ष्ट व ष्ठके स्थान पर ट्ठ, र्त व र्द के स्थान पर ड्ड तथा ढ्य के स्थान पर ड्ढ होता है। जैसे–नर्तकी = णट्टइ, दृष्टि = दिट्ठि,गोष्ठी गोट्ठी,गर्त = गड्ड, गर्दभ = गड्डह और आढ्य का अड्ढ होता है।

प्लव = विप्पव, रुक्म = रुप्प, उत्फुल्ल = उप्फुल्ल, निष्फल = णिप्फल,, स्फुट = फुड, पुष्प = पुप्फ शरीर स्पर्श = सरीरप्फस्स ।

१५ व्व-म्मः-संस्कृत के द्व, र्व और ब्र के स्थान पर प्राकृत 'ब्व' तथा ग्म, ड्म, भ्य, भ्र और र्भ के स्थान पर 'ब्म' का प्रयोग होता है । जैसे--उद्विग्न = उव्विग्ग, बर्बर = बब्बर, आह्मण्य = अब्बम्हण्णं, प्राग्भार = पब्भार, सद्भाव = सब्भाव, अभ्यर्थना = अब्भत्थणा, अभ्र = अब्भ और गर्भ का गब्भ होता है ।

१६ म्म-म्ह.-संस्कृत के ड्म, ण्म, न्म, म्य, र्म, ल्म, के स्थान पर प्राकृत में म्म' तथा ष्म, क्ष्म, स्म, ह्म के स्थान पर 'म्ह' का प्रयोग होता है । जैसे—दिङ्मुख = दिम्मुह, षण्मुख = छम्मुह, जन्म = जम्म, सौम्य = सोम्म, वर्मन् = वम्म, गुल्म = गुम्म; तथा ग्रीष्म = गिम्ह, पक्ष्मन् = पम्ह, विस्मय = विम्हअ, ब्राह्मण का बम्हण.

१७ रिः—संस्कृत के दृ और र्य का प्राकृत में 'रि' होता है । जैसे—तादृश = तारिस, चौर्य ~ चोरिअ,

१८ ल्ल-ल्ह:-संस्कृत के ल्य, र्ल, र्य का (क्वचित्) 'ल्ल' और ह्ल का प्राकृत में 'ल्ह' होता है । जैसे-शल्य = सल्ल, निर्लज्ज = णिल्लज्ज, पर्याण = पल्लाण; कह्लार = कल्हार.

१९ व्वः—संस्कृत के व्य (व) और र्व का प्राकृत में 'व्व' होता है । जैसे-काव्य = कव्व और पूर्व = पुव्व.

धर्म

(१) धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो
देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो।
(२) धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरणमुत्तमं।
(३) धम्मं चरसु दुच्चरं।
(४) धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ।
(५) चइज्ज देहं न हु धम्मसासणं।
(६) सयं मूढे धम्मं नाभिजाणइ।

विनय

(१) धम्मस्स विणओ मूलं।
(२) विणए ठविज्ज अप्पाण,इच्छन्तो हियमप्पणो
(३) विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणीयस्स य
(४) न यावि मुक्खो गुरुहीलणाए।
(५) जस्संतिए धम्मपयाइ सिक्खे, तस्संतिए वेणइयं
पउंजे।

धर्म

(१) अहिंसा संयम और तप रूप धर्म ही श्रेष्ठ मंगल है। जिसका मन हमेशा धर्म में अनुरक्त रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

(२) धर्म संसार-सागर में द्वीप के समान है, आधार रूप है, गति देने वाला है, (अथवा दुःख में छूटने का उपाय है।) और उत्तम शरणभूत है।

(३) दुष्कर धर्म का आचरण करो।

(४) शुद्ध हृदय में ही धर्म स्थिर रहता है।

(५) शरीर भले ही छूट जाय परन्तु धर्मशासन का त्याग न करो।

(६) अज्ञानी मनुष्य धर्म को कदापि नहीं जान सकता है।

विनय

(१) धर्म का मूल विनय है।

(२) जो अपनी आत्मा का कल्याण चाहता है उसे अपनी आत्मा को विनय में स्थापित करना चाहिए।

(३) अविनीत को विपत्ति और विनीत को सम्पत्ति प्राप्त होती है।

(४) गुरु की निन्दा या अवज्ञा करने से मोक्ष नहीं मिल सकता है।

(५) जिनके पास धर्मपद-अर्थात् सूत्र सिद्धान्त का अभ्यास करें उनके प्रति विनय का प्रयोग करना चाहिए।

मुक्तिमार्ग

(१) नाणं च दसणं चेव, चरित्तं च तवो तह
एस मग्गो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं

(२) नाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झ

सम्यग्ज्ञान

१) पढमं णाणं तओ दया ।

२) जहा सुई ससुत्ता पडिया वि ण विणस्
तहा जीवो ससुत्तो संसारे न विणस्स

सम्यग्दर्शन

१) सम्मत्तदंसी न करेइ पावं ।

२) संबुज्झह, किं न बुज्झह,
संबोही खलु पेच्च दुल्लहा ।

सम्यक् चारित्र

अहिंस-सच्चं च अतेणगं च
तत्तो य बंभं अपरिग्गहं च ।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि
चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विदू ।।

मुक्तिमार्ग

(१) यथार्थ द्रष्टा जिन भगवान् ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र ...ौर तपको मोक्ष का मार्ग बताया है।

...्र मुमुक्षु जीव ज्ञान से वस्तु-स्वरूप को जानता है, दर्शन से ...स पर श्रद्धा करता है, चारित्र से आत्मविकार और इन्द्रियों ...र निग्रह करता है और तप के द्वारा आत्मा को विशुद्ध ...नाता है।

सम्यग् ज्ञान

(१) प्रथम तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। बाद ही ...या-चारित्र का पालन बराबर हो सकता है।

...ी (२) जिस प्रकार सूत्र (डोरा) सहित सुई गिर पड़ने पर ...ी नहीं गुमती है उसी तरह सूत्रसहित (सिद्धान्त वेत्ता) जीव ...सार में इधर-उधर नहीं भटकता है।

सम्यग् दर्शन

(१) सम्यग्द्रष्टा--यथार्थ तत्त्वदर्शी आत्मा पाप का उपा-...न नहीं करता।

(२) हे जीवों! समझो; क्यों नहीं समझते? परलोक में ...ोधि-सम्यक्त्व की प्राप्ति होना दुर्लभ है।

सम्यक्-चारित्र

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच महाव्रतों को ग्रहण कर बुद्धिमान् जिनभगवान् द्वारा प्ररूपित धर्म का आचरण करें।

अहिंसा

(१) अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो
(२) सव्वेसि जीवियं पियं ।
सव्वे जीवा वि इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जि
(३) न हणे पाणिणो पाणे ।
(४) नाइवाएज्ज कंचणं ।
(५) एय खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ कंचणं

सत्य

(१) तं सच्चं खु भगवं ।
(२) सच्चम्मि धिइं कुव्वहा ।
(३) सच्चं लोगम्मि सारभूयं ।
(४) अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मेत्तिं भूएसु कप्प
(५) मुसावाओ य लोगम्मि, सव्वसाहूहिं गरिहिः
अविस्सासो य भूयाणं, तम्हा मोसं विवज्ज

अचौर्य-व्रत

(१) चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।
दन्तसोहणमित्तं पि, उग्गहं से अजाइया ॥
तं अप्पणा न गिण्हंति, नो वि गिण्हावए परं
अन्नं वा गिण्हमाणं पि, नाणुजाणन्ति संजया ।

अहिंसा

(१) सब प्राणियों के प्रति संयमभाव रखना–इसे ही भगवान् ने सच्ची अहिंसा बताई है।

(२) सब प्राणियों को अपना जीवन प्रिय लगता है। सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।

(३) किसी भी प्राणी के प्राणों का वध नहीं करना चाहिए।

(४) किसी भी जीव की हिंसा न करो।

(५) किसी की हिंसा न करना ही ज्ञान का सार है।

सत्य

(१) सत्य ही भगवान् है।

(२) सत्य में स्थिर रहो–अर्थात् कष्ट पड़ने पर भी सत्य का परित्याग न करो।

(३) सत्य ही संसार में सारभूत है।

(४) अन्तरात्मा से सत्य का अन्वेषण करना चाहिए और प्राणियों पर मित्रता का भाव रखना चाहिए।

(५) सब सन्तपुरुषों ने मृषावाद की निन्दा की है। झूठ बोलने वाला सब का अविश्वास-पात्र होता है अतः मृषावाद का त्याग करना चाहिए।

अचौर्य-व्रत

(१) कोई भी वस्तु चाहे वह सजीव हो या निर्जीव हो, अल्प हो या बहुत हो, यहाँ तक कि दाँत कोतरने की सलाई भी सन्तपुरुष, स्वामी की आज्ञा लिए बिना स्वयं नहीं लेते हैं, दूसरों से नहीं लिवाते हैं और इस प्रकार लेने वाले को ठीक भी नहीं समझते हैं।

४ सद्धा परम दुल्लहा ।
५ सुइं च लद्धुं सद्धं च वीरियं पुण दुल्लहं ।

अप्रमाद

१ समयं गोयम ! मा पमायए ।
२ उट्ठिए, नो पमायए ।
३ सव्वओ पमत्तस्स भयं ।
४ असंखयं जीवियं मा पमायए,
  जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं ।
५ धीरे मुहुत्तमवि नो पमायए ।
  वओ अच्चेइ जोव्वणं च जीवियं ।

कर्त्तव्य-निर्देश

१ खंतिं सेविज्ज पण्डिए ।
२ जिइन्दिए जो सहइ स पुज्जो ।
३ नो लोगस्स एसणं चरे ।
४ नो निण्हवेज्ज वीरियं ।
५ खुड्डेहिं सह संसग्गं हासं कीडं च वज्जए ।
६ पिट्ठिमंसं न खाइज्जा, मायामोसं विवज्जए
७ काले कालं समायरे ।
८ जं सेयं तं समायरे ।
९ वसे गुरुकुले णिच्चं ।

४ धर्मश्रद्धा अत्यन्त दुर्लभ है।

५ धर्म-श्रवण और धर्म-श्रद्धा प्राप्त होने पर भी धर्म में पराक्रम करना अत्यन्त दुर्लभ है।

अप्रमाद

१ हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद न करो।

२ उठो, प्रमाद न करो।

३ प्रमादी पुरुष को चारों तरफ से भय रहता है।

४ जीवन असंस्कृत (नहीं साँधा जा सकने वाला-क्षण-भंगुर) है अतः प्रमाद न करो। जब वृद्धावस्था आती है तब कोई रक्षण करने वाला नहीं होता है।

५ धीर पुरुष मुहूर्त मात्र का भी प्रमाद न करें क्योंकि आयुष्य कम होता जा रहा है तथा यौवन और जीवन बीतता जा रहा है।

कर्त्तव्य-निर्देश

१ बुद्धिमान् पुरुष क्षमा का सेवन करे।

२ जितेन्द्रिय बन कर जो सहन करता है वह पूज्य है।

३ लोक-सम्बन्धी एषणा नहीं करनी चाहिए। अर्थात् लौकिक लाभ की इच्छा नहीं रखनी चाहिए।

४ अपनी शक्ति का अपव्यय न करो।

५ क्षुद्र पुरुषों का संसर्ग नहीं करना चाहिए तथा उनके साथ हास्य-क्रीड़ा भी नहीं करनी चाहिए।

६ किसी की चुगली या परोक्ष में निन्दा न करो और कूड़-कपट का त्याग करो।

७ प्रत्येक कार्य यथासमय करना चाहिए।

८ जो कल्याणकारी है उसका आचरण करो।

९ निरन्तर गुरुकुल में निवास करना चाहिए।

सूत्र-विभाग

गरुयत्तं-लहुयत्तं

प्र०:-कहं णं भंते ! जीवा गरुयत्तं हव्वं आगच्छंति ?

उ०:-गोयमा ! पाणाइवाएणं, मुसावाएणं,
दाणेणं, मेहुणेण, परिग्गहेणं, कोह-माण-माया-
पेज्ज-दोस-कलह-अब्भक्खाण-पेसुन्न-
परिवाय-मायामोस-मिच्छादंसणसल्लेणं, एवं
गोयमा ! जीवा गरुयत्तं हव्वं आगच्छंति ।

प्र०:-कहं णं भंते ? जीवा लहुयत्तं हव्वं आगच्छंति ?

उ०:-गोयमा ? पाणाइवायवेरमणेणं जाव
सल्लविरमणेण एवं खलु गोयमा ! जीवा लहुयत्तं
हव्वं आगच्छंति ।

एवं संसारं आउलीकरेंति, एवं परित्तीकरेंति
दीहीकरेंति, एवं हस्सीकरेंति एवं अणुपरियट्टंति
वीतिवयंति पसत्था चत्तारि, अपसत्था चत्तारि ।

श्री भगवतीसूत्र
१ श०; उ० ९

गुरुत्व-लघुत्व

प्रश्न—हे भगवन् ? जीव किस प्रकार कर्म-भार से भारी होते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! प्राणातिपात से, मृषावाद से, अदत्तादान से, मैथुन से, परिग्रह से, क्रोध-मान-माया-लोभ-राग द्वेष-कलह, अभ्याख्यान (कलङ्क) पैशुन्य (चुगली) अरति-रति-पर-परिवाद, कूट-कपटमय झूठ और मिथ्यादर्शन शल्य से जीव कर्म-भार से भारी होते हैं। हे गौतम ! इस प्रकार जीव कर्मभार से भारी होते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! जीव किस प्रकार कर्मभार से हल्के होते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! प्राणातिपात से निवृत्त होने से यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से निवृत्त होने से। हे गौतम ! इस प्रकार जीव कर्मभार से हल्के होते हैं।

इस प्रकार संसार की वृद्धि करते हैं, संसार को सीमित करते हैं, संसारकाल बढ़ाते हैं, संसार काल कम करते हैं, संसार परिभ्रमण करते हैं और संसार से पार हो जाते हैं। चार शुभ और चार अशुभ हैं।

श्री भगवती सूत्र १ शतक; उद्देशक

गोयम-से णं भंते ! अकिरिया किं फले ?
महा०-सिद्धि पज्जवसाणफला पन्नत्ता गोयमा !

गाहा

सवणे णाणे य विन्नाणे पच्चक्खाणे य संजमे ।
अणण्हये तवे चेव वोदाणे अकिरिया सिद्धी ॥

—श्री भगवती सूत्र—
शतक २; उद्देशक ५

वीरत्थुई

हत्थीसु एरावणमाहु णाए सीहो मिगाणं सलिलाण गंगा पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवो निव्वाणवादीणिह नायपुत्ते जोहेसु णाए जह वीससेणे पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु खत्तीण सेट्ठे जह दंतवक्के इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ।

सूयगड, ६, वीरत्थुई अज्झयणं

गौतम–हे भगवन् ! अक्रिय होने से क्या फल मिलता है ?

महावीर–हे गौतम ! अक्रिय हो जाने से सिद्धि प्राप्त होती है ।

इस प्रकार तथारूप श्रमण-माहण की पर्युपासना का अन्तिम फल सिद्धि प्राप्त करना है ।

–गाथा–

सेवा से श्रवण, ज्ञान, विज्ञान, प्रत्याख्यान, संयम, अनाश्रवत्व, तप, कर्म-क्षय, अक्रियत्व और सिद्धि प्राप्त होती है ।

–श्री भगवती सूत्र शतक २-उद्देशक ५

वीरस्तुति

जिस प्रकार हाथियों में ऐरावत हाथी प्रसिद्ध है, मृगादि पशुओं में सिंह, नदियों में गंगा, पक्षियों में वेणुदेव गरुड़ श्रेष्ठ है, इसी तरह निर्वाणवादियों में ज्ञातपुत्र भगवान महावीर श्रेष्ठतम है ।

जिस प्रकार योद्धाओं में विश्वसेन विख्यात है, [illegible] जिस प्रकार कमल सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है, क्षत्रियों में [illegible] श्रेष्ठ है इसी तरह ऋषियों में महावीर वर्धमान [illegible] है ।

जिस प्रकार दानों में अभयदान श्रेष्ठ है, [illegible] पापरहित सत्य बोलना श्रेष्ठ है, तप में [illegible] इसी तरह ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर [illegible] उत्तम हैं ।

महप्पा–महावीरो

जयइ जगजीवजोणिवियाणओ जगगुरू जगाणंदो।
जगणाहो जगबंधू जयइ जगप्पियामहो भयवं॥
जयइ सुआण पभवो तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ।
जयइ गुरू लोगाणं जयइ महप्पा महावीरो॥
भद्दं सव्वजगुज्जोयगस्स भद्दं जिणस्स वीरस्स।
भद्दं सुरासुरनमंसियस्स भ ं धुयरयस्स॥

--नन्दीसूत्रम्

लोय-ट्ठिती (लोकस्थिति)

गोयम–कइविहा णं भंते ! लोयट्ठिती पन्नत्ता ?
महा०--गोयमा ! अट्ठविहा लोयट्ठिती पन्नत्ता। तंज

१ आगासपइट्ठिए वाए
२ वायपइट्ठिए उवही
३ उवहिपइट्ठिया पुढवी
४ पुढवीपइट्ठिया तसा, थावरा पाणा
५ अजीवा जीवपइट्ठिया
६ जीवा कम्मपइट्ठिया
७ अजीवा जीवसंगहिया
८ जीवा कम्मसंगहिया

महात्मा महावीर

संसार की समस्त जीवयोनियों के जानने वाले, जगद्गुरु, जगत् को आनन्द प्रदान करने वाले, जगत् के नाथ जगद्बन्धु और जगत् के पितामह भगवान् की जय हो।

श्रुतज्ञान के मूल स्रोत की जय हो, अन्तिम तीर्थङ्कर की जय हो, त्रिलोक के गुरु की जय हो और महात्मा महावीर की जय हो।

समस्त संसार में उद्योत करने वाले का कल्याण हो, देव और असुरों के वन्दनीय का कल्याण हो और कर्मरूपी रजमैल को नष्ट करने वाले वीर जिनेश्वर का कल्याण हो।

—श्रीनन्दीसूत्र

लोकस्थिति

गौतम—हे भगवन्! लोकस्थिति कितने प्रकार की कही गई है?

महावीर—हे गौतम! लोकस्थिति आठ प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है:—

(१) वायु, आकाश के आधार पर रहा हुआ है। (आकाश स्वयं प्रतिष्ठित है।)
(२) वायु के आधार पर उदधि (जल) रहा हुआ है।
(३) जल के आधार पर पृथ्वी रही हुई है।
(४) पृथ्वी के आधार पर त्रस-स्थावर प्राणी रहे हुए हैं।
(५) जीव के आश्रित (शरीरादि) अजीव रहे हुए हैं। (आधार-आधेय सम्बन्ध)
(६) जीव कर्म के आश्रित रहे हुए हैं।
(७) जीव के द्वारा संगृहीत होने से अजीव जीवाश्रित हैं। (ग्राह्य-ग्राहकसम्बन्ध)
(८) जीव कर्मों के द्वारा संगृहीत हैं।

गोयम–से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ–अट्ठविहा जाव जीवा कम्मसंगहिया ?

महा०–गोयमा ! से जहाणामए केइ पुरिसे वत्थिमाडोवेइ, वत्थिमाडोवित्ता उप्पिं सितं बंधइ, बंधइत्ता मज्झेणं गंठिं बंधइ, बंधइत्ता उवरिल्लं गंठिं मुयइ, मुइत्ता उवरिल्लं देसं वामेइ, उवरिल्लं देसं वामेत्ता उवरिल्लं देसं आउयायस्स पूरेइ, पूरित्ता उप्पिं सितं बंधइ, बंधित्ता मज्झिल्लं गंठिं मुयइ, मुइत्ता से णूणं गोयमा ! से आउयाये वाउयायस्स उप्पिं उवरिमतले चिट्ठइ ?

गोयम–हंता चिट्ठइ।

महा०–से तेणट्ठेणं जाव–'जीवा कम्मसंगहिया' से जहा केइ पुरिसे वत्थिं आडोवेइ, आडोवित्ता कडिं बंधइ, बंधित्ता अत्थाहमतारमपोरसियंसि उदगंसि ओगाहेज्जा। से णूणं गोयमा ! से पुरिसे तस्स आउयायस्स उवरिमतले चिट्ठइ ?

हंता चिट्ठइ।

एवं वा अट्ठविहा लोगट्ठिई पन्नत्ता, जाव जीवा कम्मसंगहिया।

–भगवतीसूत्र १ शतक, ६ उद्देशक

तम–हे भगवन् ! ऐसा किस अभिप्राय से कहा जाता है कि लोकस्थिति आठ प्रकार की है यावत् जीव कर्मसंगृहीत हं ?

ावीर-गौतम ! जैसे कोई पुरुष मशक को हवा से भर लेता है, मशक को हवासे भरकर ऊपर गाँठ लगाता है, गाँठ लगाकर मध्य में गाँठ बाँधता है, मध्य में गाँठ लगाकर ऊपर की गाँठ को खोल देता है, खोलकर ऊपर के भाग को खाली कर देता है, खाली करके ऊपर के भाग में पानी भर देता है, पानी भरकर ऊपर गाँठ लगा देता है, ऊपर गाँठ लगाकर मध्य की गाँठ को खोल देता है तो हे गौतम ! वह पानी वायु के ऊपर रहता है या नहीं ?

तम–हाँ भगवन् ! रहता है ।

ावीर–इस अभिप्राय से कहा जाता है कि आठ प्रकार की लोकस्थिति है यावत् जीव कर्मसगृहीत हैं ।

- भगवतीसूत्र शतक १, उद्देशक ६

निग्गंथ-पावयणं

इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलि पडिपुण्णं संसुद्ध नेयाउय सल्लकत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिम निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमसंदिद्धं सव्वदुक्ख प्पहीणमग्गं।

एत्थ ठिया जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति,परि णिव्वायंति,सव्वदुक्खाणमन्तं करेंति।

- सूयगडांग-नालंदइज्जज्झयण

अप्पा

से ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे' ण तंसे, ण चउरंसे ण परिमडले;

ण किण्हे, ण णोले, ण पीए,ण लोहिए,ण सुक्किले, ण सुरहिगंधे, ण दुरहिगंधे;

ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाए, ण अंबिले, ण महुरे; ण कक्खडे, ण मउए, ण गरुए, ण ... उण्हे, ण णिद्धे, ण लुक्खे;

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है, श्रेष्ठ है, केवलिप्ररूपित है, परिपूर्ण है, संशुद्ध है, न्यायसंगत है, शल्य को काटने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति का मार्ग है, मुक्तिरूपी महानगर का मार्ग है, निर्वाण का मार्ग है, अवितथ (यथातथ्य) है, असंदिग्ध है और सब दुःखों को नष्ट करने का मार्ग है।

इसमें रहे हुए (इसका आश्रय लेने वाले) जीव सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं और सब दुःखों का अन्त करते हैं।

—सूत्रकृताङ्ग-नालन्दीय अध्ययन

आत्मा

वह (आत्मा) न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न गोल है, न त्रिकोण है, न चतुष्कोण है और न मण्डलाकार है।

वह न काला है, न नीला है, न पीला है, न लाल है, न सफेद है।

वह न सुरभिगन्ध वाला है, न दुर्गन्ध वाला है।

वह न तिक्त है, न कडुआ है, न कसैला है, न खट्टा है और न मीठा है।

वह न कर्कश है, न मृदु है, न भारी है, न हल्का है, न ठंडा है, न गरम है, न स्निग्ध है, और न रूक्ष है।

ण काऊ(ओ), ण रुहे, ण संगे, ण इत्थी, ण
ण अन्नहा, परिण्णे, सण्णे;

उवमा ण विज्जति, अरूवी सत्ता, अपयस्स
पयं णत्थि, सव्वे सरा णियट्टंति, तक्का जत्थ ण वि
ज्जइ मती तत्थ ण गाहिता, ओए, अप्पतिट्ठाणस्स खेयन्ने

से ण सद्दे, ण रूवे, ण गंधे, ण रसे, ण फासे
इच्चेतावंति त्ति बेमि ॥

–आयारंगसुत्त अ. ५, उद्देश

को माहणो ? को समणो ?

अहाह भगवं–एव से दन्ते दविए वोसट्ठकाए त्ति
वच्चे माहणे, समणे, भिक्खू, निग्गंथे त्ति वा ।

माहणः–विरए सव्वपावकम्मेहिं पिज्जदोसकलह-
अब्भक्खाण-पेसुन्न-परपरिवाय-अरइरइ-मायामोस-मिच्छा-
दंसणसल्लविरए समिए सहिए सया जए नो कुज्झे नो
माणी माहणेत्ति वच्चे ॥१॥

न काया वाला है, न पुनर्जन्मा है, न आसक्त है, न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है। वह ज्ञानमय है, संज्ञामय है।
उपमा नहीं है, अरूपी सत्ता है, वह अवस्था-रहित है, अतः उसे कहने वाला कोई शब्द नहीं है।

सभी स्वर निवृत्त हो जाते हैं, तर्क की वहां गति नहीं है, बुद्धि की वहां पहुँच नहीं है। वह प्रकाशमय है, समग्र लोक का ज्ञाता है।

वह न शब्द है, न रूप है, न गंध है, न रस है, न स्पर्श है। उसका स्वरूप है, ऐसा मैं कहता हूँ।

-आचाराङ्ग सूत्र अध्ययन ५ उद्दे० ६

माहन (ब्राह्मण) कौन ? श्रमण कौन ?

भगवान् बोले-जो इन्द्रियों का दमन करने वाला है, मुक्त होने योग्य है और जिसने शरीर का ममत्व त्याग दिया है वह माहन (ब्राह्मण), श्रमण, भिक्षु या निर्ग्रन्थ कहा जाता है।

ब्राह्मण-जो सब पाप कर्मों से निवृत्त हो चुका है, जो राग, द्वेष, कलह, मिथ्याकलंक, चुगली, दूसरों की निन्दा, अरति, रति, मायामृषा और मिथ्यादर्शनशल्य से विरत हो गया है, जो पाँच समितियों से समित है, जो ज्ञान आदि गुणों से युक्त है, जो सदा संयम में यत्न करता है, जो क्रोध नहीं करता है और मान नहीं करता वह माहन (ब्राह्मण) कहा जाता है।

समणे-एत्थ वि समणे अनिस्सिए अणि
आयाणं च अइवायं च मुसावायं च बहिद्धं च को
माणं च मायं च लोहं च पिज्जं च दोसं च इच्चेव
जओ आयाणं अप्पणो पदोसहेऊ तओ तओ आया
पुव्वं पडिविरए पाणाइवाया सिआ दंते दविए वो
काए समणे त्ति वच्चे ॥२॥

भिक्खु-एत्थवि भिक्खू अणुन्नए विणीए
दंते दविए वोसट्ठकाए संविधुणीय विरूवरूवे परीसहो
अज्झप्पजोगसुद्धादाणे उवट्ठिए ठिअप्पा संखाए पर
भोई भिक्खू त्ति वच्चे ॥३॥

निग्गंथे-एत्थ वि निग्गंथे एगे एगविऊ बुद्धे
सोए सुसंजए सुसमिए सुसामाइए आयवायपत्ते विऊ
वि सोयपलिछिन्ने धम्मट्ठी धम्मविऊ नियागपडिवन्ने स
धरे दंते दविए वोसट्ठकाए निग्गंथे त्ति वच्चे ॥४॥

—सूयगडांग सुत्त

श्रमण–जो साधु शरीरादि में आसक्त नहीं होता है, अपने तप आदि का सांसारिक सुख रूप फल मिलने की कामना नहीं करता है, जो कर्म-बन्धन के कारणों को, हिंसा को, झूठ को, मैथुन को, क्रोध-मान-माया-लोभ को, राग-द्वेष को और जिन जिन से कर्म-बन्धन होता है और आत्मा द्वेष का पात्र बनता है उनको त्याग देता है, प्राणातिपात आदि से सम्पूर्ण रूप से विरत होता है, जो इन्द्रियों को वश में करता है, जो मुक्त होने की योग्यता रखता है और जिसने शरीर का ममत्व छोड़ दिया है वह श्रमण कहा जाता है।

भिक्षु–पूर्वोक्त गुण से युक्त होकर जो पुरुष अभिमान नहीं करता है, गुरु आदि के प्रति विनय का व्यवहार करता है, जो नम्र है, दान्त है, मुक्ति के योग्य है, शरीर के मोह का त्यागी है, जो नाना प्रकार के परीषह-उपसर्गों को सहन करता है, जिसका चारित्र अध्यात्म योग के प्रभाव से निर्मल है, जो संयम में उद्यत है, जो मोक्ष मार्ग में स्थिर है और जो संसार की असारता को जानकर दूसरों के द्वारा दिये हुए भिक्षान्न मात्र से अपना निर्वाह करता है उसे भिक्षु कहना चाहिए।

निर्ग्रन्थ–जो रागद्वेष रहित होने से अकेला है, जो एक आत्मा के स्वरूप को जानता है जो तत्वों का वेत्ता है, जो आस्रव द्वारों को छेदने वाला है सुसंयत है, सुसमित है, जो शत्रु मित्र में समभाव रखता है, जो आत्मा के सच्चे स्वरूप को जानता है, जो विद्वान् है, जो द्रव्य और भाव दोनों ही प्रकार के संसार स्रोत को छेदने वाला है, धर्मार्थी है, धर्मवेत्ता है, मोक्ष मार्ग में स्थित है; जो सम्यक् विचरण करता है, दान्त है, मुक्ति के योग्य है, और शरीर ममता का जिसने त्याग किया है वह निर्ग्रन्थ कहा जाता है।   -सूत्रकृताङ्ग गाथाध्ययन १६

अट्टणसाला

तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते जेणेव अट्ट
साला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अट्टणसालं अ
पविसइ, अणुपविसित्ता–

अणेगवायामजोग्गवग्गणवामद्दणमल्लजुद्धकरणेहि
परिस्संते सयपागसहस्सपागेहिं सुगंधतेल्लमाइएहिं पीण
ज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं मयणिज्जेहिं विंहणिज्जेहिं सव्वि
गायपल्हायणिज्जेहिं अब्भंगेहिं अब्भंगिए समाणे तेल्ल
चम्मंसि पडिपुण्णपाणिपायसुउमालकोमलतलेहिं पुरि
छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं निउणसिप्पोव
एहिं अब्भंगणपरिमद्दणुव्वलकरणगुणणिम्माएहिं अ
सुहाए मंससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए संबा
णाए संबाहिए समाणे अवगयखेयपरिस्समे अट्टणसाला
पडिणिक्खमइ ॥

–औपपातिक सू
सूत्र ६१

व्यायाम शाला

तत्पश्चात् बिम्बसार का पुत्र राजा कोणिक जिधर व्यायाम-शाला थी उधर जाता है, उधर जाकर व्यायाम शाला में प्रवेश करता है, प्रवेश करके अनेक प्रकार के व्यायाम—कूदना, अंग-मर्दन करना, मल्लयुद्ध करना आदि के द्वारा थक कर, पूर्ण थक कर शतपाक-सहस्रपाक सुगन्धित तैलादि से तथा रसादि धातु बढ़ाने वाले, स्फूर्ति पैदा करने वाले, मस्ती पैदा करने वाले, धातुओं की पुष्टि करने वाले, सब इन्द्रियों और अवयवों को आनन्द देने वाले मालिश के साधनों से मालिश किये जाने पर तैलचर्म पर आसीन होकर पूर्ण और सुकोमल हाथ-पैर वाले, अवसरज्ञ, कार्य करने में दक्ष, अनुभवी, कुशल, बुद्धिमान्, अङ्ग-मर्दनादि कला में निपुण, अभ्यंगन-मर्दन उपलेपन के विशेषज्ञ पुरुषों के द्वारा हड्डियों को सुख देने वाली, मांस को सुख देने वाली, त्वचा को सुख देने वाली और रोम को सुख देने वाली इस प्रकार चार तरह की मालिश करवाकर श्रम और खेद के दूर होने पर व्यायामशाला से बाहर आता है।

—औपपातिक सूत्र ३१

सम्यक् श्रुत-गणिपिटक

यह श्रुत क्या है ?

..जो अर्हन्त भगवान्--जिन्हें केवल ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हो
है, जो तीन लोक के प्राणियों के द्वारा भक्तिपूर्वक देखे गये
वन्दित हैं और पूजित हैं, जो भूत-वर्तमान और भविष्य के
ता हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, उनके द्वारा प्रणीत बारह अङ्ग रूप
गणिपिटक सम्यक् श्रुत है। उनके नाम:-

१ आचारांग, २ सूत्रकृतांग, ३ स्थानांग, ४ समवायांग,
विवाहप्रज्ञप्ति, ६ ज्ञाताधर्मकथा, ७ उपासकदशांग, ८ अन्तकृत्-
शांग, ९ अनुत्तरौपपातिक दशांग, १० प्रश्न व्याकरण, ११
पाकसूत्र और और १२ दृष्टिवाद।

चौदह पूर्वधारियों को होने वाला यह द्वादशांग गणि-
टक का ज्ञान सम्यक् श्रुत है, सम्पूर्ण दश पूर्व धारियों का भी
म्यक् श्रुत है इसके आगे अर्थात् नौ-आठ आदि पूर्वधरों का
न सम्यक् श्रुत भी हो सकता है और असम्यक् श्रुत भी; इस
कार भजना है।

यह सम्यक् श्रुत का स्वरूप है।

—नन्दीसूत्र

उदायन राजा

किसी समय उदायन राजा पौषध-शाला में पौषध करके
केला, अद्वितीय, पाक्षिक पौषध का सम्यक् प्रकार से आराधन
रता हुआ विचरता था।

तओ तस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि जाग करेमाणस्स एयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था—

"धन्ना णं ते गामनगरा,जत्थ णं समणे वीरे विह धम्म कहेई; धन्ना णं ते राईसरपभिईओ जे समणस्स म वीरस्स अंतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं निसामेंति, एवं पंच णुव्वइय सत्तसिक्खावइयं सावगधम्मं दुवालसविहं प ज्जंति एवं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वयंति

जइ णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्वि इहेव वीयभए आगच्छेज्जा ता णं अहमवि भगव अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वएज्जा ॥"

तए णं भगवं उदायणस्स एयारूवं अज्झत्थि जाणित्ता चंपाओ पडिणिक्खमित्ता जेणेव वीयभए न जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव विहरइ । तओ प निग्गया उदायणे य ।

तए ण उदायणे महावीरस्स अंतिए धम्मं स हट्ठतुट्ठे एवं वयासी-

'ज नवर अंहपुत्त रज्जे अहिसिंचामि तओ णं अंतिए पव्वयामि ।'

सामी भणइ—'अहासुहं मा पडिबंधं करेह ।' तओ उदायणे आभिओगिय हत्थिरयण दुरूहित्ता सए गिहे आगए

तब मध्यरात्रि के समय धर्म-जागरणा करते हुए उसी
स प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ ।

'वे ग्राम और नगर धन्य हैं जहाँ श्रमण भगवान महा-
ीर विचरते हैं और धर्मोपदेश देते हैं। वे राजा युवराज सेठ
गैरह धन्य हैं जो श्रमण भगवान महावीर के पास केवली-
रूपित धर्म का श्रवण करते हैं और पाँच अणुव्रत रूप, सात
ाक्षा व्रत रूप-बारह प्रकार का श्रावक धर्म अंगीकार करते हैं
ौर मुण्डित होकर गृहस्थाश्रम से निकल कर अनगार धर्म में
व्रजित होते हैं।"

उदायन राजा के इस प्रकार के विचार को जानकर
मण भगवान् महावीर चम्पा नगरी से निकल कर जिस ओर
ीतभय नामक नगर था, जिस ओर मृगावन नामक उद्यान था,
पर पधारे। परिषद् उन्हें वन्दन के लिए निकली। उदायन
ाजा भी वन्दन के लिए गया।

तब उदायन राजा महावीर के पास धर्मोपदेश सुनकर
ोदित होता हुआ इस प्रकार बोला—

'हे भगवन्! आप जैसा कहते हैं वही सत्य है इत्यादि,
शेष यह है कि मैं ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक करके आपके
ास प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ।"

महावीर स्वामी बोले—"जैसे सुख हो वैसा करो। विलम्ब
करो।" तदनन्तर उदायन राजा अभियोगिक हस्ति रत्न पर
ारूढ होकर अपने घर आया।

तओ उदायणस्स एयारूवे अज्झत्थिए जाए 'ज' अभिइं कुमारं रज्जे ठवित्ता पव्वयामि तो अभिई रज्जे रट्ठे य जाव जणवए य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छि अणाइयं अणवयग्गं संसारकंतारं अणुपरियट्टिस्सइ।

"तं सेयं खलु मे नियगं भाइणेज्जं केसिकुमारं ठवित्ता पव्वइत्तए।"

एवं संपेहेत्ता सोभणे तिहिकरणमुहुत्ते कोडुंबियपुरि य सद्दावेत्ता एवं वयासी -

"खिप्पामेव केसिस्स कुमारस्स रायभिसेयं उवट्ठवेह। तओ महिड्ढीए अभिसित्ते केसीकुमारे राया जाए ज पसासेमाणे विहरइ।

तओ उदायणे राया केसिं रायं आपुच्छइ—

अह णं देवाणुप्पिया संसारभउव्विग्गो पव्वयामि तओ केसी राया कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेत्ता एवं वयासी

"खिप्पामेव उदायणस्स रन्नो महत्थं महरियं निक्ख मणाभिसेयं उवट्ठवेह।।"

तओ महया विभूईए अभिसित्ते सिवियारूढे भगवओ समीवे गंतूण पव्वइए जाव बहूणि चउत्थछट्ठट्ठमदसम- दुवालसमासद्धमासाईणि तवोकम्माणि कुव्वमाणे विहरइ।

\+ \+ \+

तत्पश्चात् उदायन को इस प्रकार अध्यवसाय हुआ कि यदि मैं अभिजित् कुमार को राज्यारूढ़ करके दीक्षा लेता हूँ तो अभिजित् कुमार राज्य में, राष्ट्र में यावत् जनपद में और मानुषिक काम-भोगों में मूर्छित होकर अनादि-अनन्त संसार रूपी अटावन में भटकता रहेगा। "इसलिए अच्छा है कि मैं अपने भागिनेय (भानेज) केशीकुमार को राज्य पर आरूढ़ कर दीक्षा लूं।"

ऐसा विचार कर शुभ तिथि, करण और मुहूर्त में कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर वह इस प्रकार बोला:–

'शीघ्र ही केशी कुमार के राज्याभिषेक की तैयारी करो।' तत्पश्चात् केशी कुमार का धूमधाम से राज्याभिषेक हुआ। वह राजा हो गया यावत् वह शासन करता हुआ विचरने लगा।

तदनन्तर उदायन राजा ने केशी राजा से पूछा कि— देवानुप्रिय! मैं संसार-भय से उद्विग्न हुआ हूँ अतः दीक्षा धारण करता हूँ।

तब केशी राजा कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर इस प्रकार कहने लगा—शीघ्र ही उदायन राजा के महर्द्धिक, बहुमूल्य, दीक्षाभिषेक की तैयारी करो।"

तब विपुल ऋद्धि-समृद्धि के साथ उदायन राजा का दीक्षाभिषेक किया गया और वह पालकी में बैठ कर भगवान् के समीप जाकर दीक्षित हुआ। वह बहुत से उपवास-दो उपवास तीन उपवास-चार उपवास-पाँच उपवास, पन्द्रह उपवास आदि तप करता हुआ विचरने लगा।

\+ \+ \+ \+

भगवओ अंतेवासी

तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवओ महावीरस्स अं
वासी बहवे समणा भगवंतो अप्पेगइया उग्गपव्वइया भो
पव्वइया राइण्ण-णाय-कोरव्व-खत्तियपव्वइया भडा जो
सेणावइपसत्थारो सेट्ठी इब्भा अण्णे य बहवे एवमाइ
उत्तमजाइकुलरूव-विणय-विण्णाण-वण्णलावण्ण-विक्क
पहाण-सोभग्गकंतिजुत्ता बहुधण्णधणणिचयपरियालफि
णरवइगुणाइरेगा इच्छियभोगा सुहसंपललिया किंप
फलोवमं च मुणिय विसयसोक्खं जलबुब्बुयसम
कुसग्गजलबिंदुचंचलं जीवियं य णाऊण अधुवमिणं र
मिव पडग्गलग्गं संविधुणित्ताणं चइत्ता हिरण्णं, वि
सुवण्णं चिच्चा धणं धण्णं बलं वाहणं कोसं कोट्ठाग
रज्जं रट्ठं पुरं अंतेउरं चिच्चा विउलधणकणगरयणमणि
मोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइयं संतसारसावते
विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं च दाइयाण परिभाइत्ता
मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया संजमे
तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ।

भगवान् का शिष्य-समुदाय

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य
से पूज्य श्रमण संयम और तप से अपने आपको भावित
हुए विचरते थे। उनमें कोई उग्रकुल के दीक्षित हुए थे, कोई
कुल के दीक्षित हुए थे, कोई राजन्य कुल के, कोई ज्ञातवंश
कोई कुरुवंश के और कोई क्षत्रिय वर्ण के दीक्षित हुए थे।
वीर, योद्धा, सेनापति, धर्मशास्त्र पाठक (पुरोहित) श्री देवना
स्वर्ण का पट्टा मस्तक पर धारण करने वाले सेठ, हस्ति-
प्रमाण द्रव्यराशि वाले धनिक इत्यादि अनेक उत्तम जाति-कुल-
-विनय-विज्ञान--वर्ण--लावण्य--विक्रम वाले, प्रधान सौभाग्य
र कान्ति से युक्त, बहुत धन-धान्य और परिवार वाले, राजा
वैभव-सुख का भी अतिक्रमण करने वाले, इच्छित भोग
गने वाले, सुख की गोद में पले हुए व्यक्ति विषय सुख को
पाक फल के समान समझ कर, जीवन को जल बुद्बुद के
मान और कुश के अग्र भाग पर रहे हुए जलबिन्दु के समान
ञ्चल जानकर, सासारिक सुख को अध्रुव जानकर कपड़े पर
गी हुई धूल की तरह उसे झटक कर, चाँदी को छोड़कर, सोने
ो छोड़कर धन-धान्य--सेना-वाहन, कोष, कोठा, रत्न, मणि,
ौक्तिक, शंख, विद्रुम, पद्मरागादि विद्यमान प्रधान द्रव्य को छोड़
कर, गुप्त धन को प्रकट कर, दान देकर, गोत्रिक जनों में विभक्त
कर मुण्डित होकर गृहस्थाश्रम से निकल कर, अनगार धर्म में
प्रव्रजित हुए थे। प्रव्रजित होकर वे संयम और तप से अपनी
आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

—औपपातिक सूत्र

दढपइण्णस्स दारगस्स कला-सिक्खणं

तं दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो साइरेगअट्ठवासजायगं जाणित्ता सोभणंसि तिहिकरणदिवसणक्खत्तमुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेहिंति । तए णं से कलायरिए तं दारगं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिकलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहाविहिति सिक्खाविहिति, तं जहा-

लेहं गणियं रूवं नट्टं गीयं वाइयं सरगयं पुक्खरगयं समतालं; जूयं जणवायं पासगं अट्ठावयं; पोरेकच्चं दगमट्टियं, अन्नविहिं पाणविहिं सयणविहिं, अज्जं पहेलियं मागहियं गाहं गीइयं सिलोयं, हिरण्णजुत्तिं सुवण्णजुत्तिं गंधजुत्तिं चुण्णजुत्तिं आभरणजुत्तिं, तरुणीपडिकम्मं इत्थिलक्खणं पुरिसलक्खणं हयलक्खणं गयलक्खणं गोणलक्खणं कुक्कुडलक्खणं चक्कलक्खणं छत्तलक्खणं चम्मलक्खणं दंडलक्खणं असिलक्खणं मणिलक्खणं कागणिलक्खणं वत्थुविज्जं खंधारमाणं नगरमाणं वत्थुनिवेसणं,

वूहं पडिवूयं चारं परिचारं चक्कवूहं गरुलवूहं सग
वूहं, जुद्धं निजुद्धं जुद्धाइजुद्ध मुट्ठिजुद्धं बाहुजुद्धं लयाजु
ईसत्थं छरुप्पवाह धणुव्वेयं हिरण्णपागं सुवण्ण पा
(मणिपागं धाउपागं) वट्टखेडुं सुत्ताखेडुं णालियाखे
पत्तच्छेज्ज कडगच्छेज्जं सज्जीव निज्जीवं सउणरुयमिट
बावत्तरीकलाओ सेहाविता सिक्खाविता अम्मापिउ
उवणेहिति ।

\+ \+ \+ \+

तए णं तस्स दढपइणस्स दारगस्स अम्मापियरो
कलायरियं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेण वत्थगं
मल्लालंकारेण य सक्कारेहिति सम्माणेहिति सम्माणित
विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइस्सति दलइत्ता पडिविस
ज्जेहिति ।

\+ \+ \+ \+

तए ण से दढपइण्णे दारए बावत्तरिकलापंडिए नवंग
सुत्तपडिबोहिए अट्ठारसदेसीभासाविसारए गीयरई गंधव्व-
णट्टकुसले हयजोही गयजोही रहजोही बाहुजोही बाहुप्प-
मद्दी वियालचारी साहसिए अलं भोगसमत्थं यावि
भविस्सइ ।

\+ \+ \+ \+

तब उस दृढप्रतिज्ञ बालक के माता-पिता उन कलाचार्य का विपुल अशन-पान-खादिम-स्वादिम, वस्त्र-गंध-माल्य और अलंकारों से सत्कार करेंगे, सम्मान करेंगे। सत्कार-सम्मान कर जीवन पर्यंत निर्वाह हो सके इतना विपुल प्रीतिदान देंगे और उन्हें विदाई देंगे।

\+ + + +

तदनन्तर वह दृढप्रतिज्ञ बालक बहत्तर कलाओं में पण्डित होगा उसके नौ अंग जो बचपन के कारण अव्यक्त चेतन वाले होंगे वे युवावस्था के कारण जागृत होंगे। वह अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में विशारद होगा। गायन में उसकी रुचि होगी। गन्धर्व नृत्य में कुशल होगा। अश्वयुद्ध, गज-युद्ध, रथ-युद्ध करने वाला, बाहुप्रमर्दी, विकालचारी साहसिक और भोगसमर्थ होगा।

\+ + + +

अणगारा भगवंतो

अणगारा भगवंतो ईरियासमिया भासासमिया एसण समिया आयाणभंडमत्तणिक्खेवणसमिया, उच्चारपासवण खेल्लसिंघाणजल्लपरिट्ठावणियासमिया, मणगुत्ता, वयगुत्ता कायगुत्ता गुत्ता गुत्तिंदिया गुत्तबंभयारी, अकोहा अमाण अमाया अलोभा संता पसंता उवसंता परिनिव्वुडा अणा सवा अग्गंथा छिन्नसोया निरुवलेवा—

कंसपाइव्व मुक्कतोया
संखो इव निरंजणा

जीव इव अपडिहयगई
गगणतलं पिव निरालंबणा

वाउरिव अपडिबद्धा
सारदसलिलं व सुद्धहियया

पूज्य अनगार

: घर-बार छोड़ कर साधु बने हुए भाग्यवान् पुरुष ईर्या-
...ति का पालन करते हैं। (देखकर यतनापूर्वक चलते हैं),
...पूर्वक सत्य-हित-मित-भाषण करते हैं, निर्दोष रीति से
...रादि की एषणा (गवेषणा और उपयोग) करते हैं, पात्र
... आदि वस्तुओं को रखने और उठाने में विवेक से काम लेते
... मल-मूत्र, नाक का मैल, खँखार, शरीर का मैल आदि को
...ने में बड़ी सावधानी और उपयोग रखते हैं। वे मन-वचन
... काया को वश में रखते हैं। वे गुप्तियों से गुप्त, इन्द्रियों को
... में रखने वाले और विषयों से बचते हुए ब्रह्मचर्य का पालन
...ते हैं। वे क्रोध, मान, माया और लोभ से रहित हैं। वे शांत
...न्त तथा उपशान्त हैं और सब प्रकार के सन्ताप से रहित
। वे आस्रवों का सेवन नहीं करते हैं और सब प्रकार के परिग्रहों
रहित हैं। वे संसार के प्रवाह का छेदन किये हुए और कर्म-
...के लेप से रहित होते हैं।

जिस प्रकार कांसे के पात्र में जल का लेप नहीं लगता
...ी तरह इन महापुरुषों के कर्म-मैल का लेप नहीं लगता है।

जैसे शंख पर काला रंग आदि नहीं होता, इसी तरह इन
... राग या द्वेष का कोई रंग नहीं होता।

जैसे जीव की गति कहीं नहीं रुकती, इसी तरह उनकी
...ति भी कहीं नहीं रुकती।

जैसे आकाश किसी के सहारे नहीं रहता, इसी तरह ये
...ी किसी के सहारे नहीं रहते।

...ये वायु के समान प्रतिबन्ध-रहित हैं।

शरद् ऋतु के जल के समान इनका हृदय निर्मल होता है।

पुक्खरपत्तं व निरुवलेवा
कुम्मो इव गुत्तिंदिया
विहग इव विप्पमुक्का
खग्गविसाणं व एगजाया
भारंडपक्खी व अप्पमत्ता
कुंजरो इव सोंडीरा
वसभो इव जायत्थामा
सीहो इव दुद्धरिसा
मंदरो इव अप्पकंपा
सागरो इव गंभीरा
चंदो इव सोमलेसा
सूरो इव दित्ततेया
जच्चकंचणगं व जायरूवा
वसुंधरा इव सव्वफासविसहा
सुहुयहुयासणो वि य तेयसा जलंता

—सूत्रकृताङ्ग
किरियाठाण

जैसे कमल के पत्ते पर जल का लेप नहीं लगता इसी तरह इन पर किसी का लेप नहीं लगता (अर्थात् ये अनासक्त होते हैं।)

ये कछुए की तरह इन्द्रियों का गोपन करते हैं।

पक्षी की तरह उन्मुक्त विहारी होते हैं।

गेंडे के सिंग की तरह वे एक ही होते हैं। (अर्थात् राग-द्वेष-रहित होने से भाव से अकेले होते हैं।)

ये भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त होते हैं।

हाथी के समान कषायों को या कर्मों को तोड़ने में दक्ष होते हैं।

ये बैल की तरह संयम भार-वहन करने में समर्थ होते हैं।

सिंह के समान दुर्धर्ष होतेहैं। (अर्थात् परीषहों से पराजित होने वाले नहीं होते हैं।)

मेरु के समान अकम्प होते हैं।

समुद्र के समान गम्भीर होते हैं।

चन्द्र के समान सौम्य और शीतल होते हैं।

सूर्य के समान तेजस्वी होते हैं।

उत्तम जाति वाला सोना जैसे मिट्टी के मैल से रहित होता है,वैसे रागादि मैल के छूट जाने से ये शुद्ध स्वरूप वाले होते हैं।

पृथ्वी के समान सब सहन करने वाले होते हैं।

अच्छी तरह आहुति से सिञ्चित अग्नि की तरह ये तेज से देदीप्यमान होते हैं।

—सूत्रकृतांग क्रियास्थान, अध्ययन

धर्माराधना

श्रमण भगवान् महावीर ने दो प्रकार का धर्म कहा है:-- एक अगार-धर्म और दूसरा अनगार-धर्म। सर्वतः और सर्वथा मुंडित होकर, गृहस्थाश्रम से निकल कर अनगार-धर्म में प्रव्रजित होकर सब प्रकार के प्राणातिपात से निवृत्त होना, मृषावाद-अदत्तादान-मैथुन-परिग्रह और रात्रिभोजन से सर्वथा निवृत्त होना अनगार धर्म कहा गया है। हे आयुष्मन्! यह अनगार-सामायिक धर्म कहा गया है। इस धर्म की शिक्षा (ग्रहण और आसेवन) में उपस्थित हुए साधु अथवा साध्वी सम्यक् विचरण करते हुए आज्ञा के आराधक होते हैं।

अगार धर्म (श्रावक धर्म) बारह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है:-पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत।

पांच अणुव्रत इस प्रकार कहे गये हैं:-

१ स्थूल प्राणातिपात से (हिंसा से) निवृत्त होना.
२ स्थूल मृषावाद से निवृत्त होना.
३ स्थूल अदत्तादान से निवृत्त होना,
४ स्वपत्नी-संतोष.
५ इच्छा-परिमाण.

तीन गुणव्रत इस प्रकार कहे गये हैं.--६ दिशाव्रत ७ उपभोग परिभोग-परिमाण व्रत और ८ अनर्थदण्ड से निवृत्त होना। चार शिक्षाव्रत इस प्रकार हैं:---९ सामायिक व्रत, १० देशावकाशिकव्रत, ११ पौषधोपवास व्रत और १२ अतिथि-संविभाग व्रत।

अपच्छिम-मारणंतिया संलेहणा झूसणाराहणा अयमाउसो ! अगारसामाइए धम्मे पण्णत्ते । एअस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्ठिए समणोवासए वा समणोवासिया वा विहरमाणे आणाए आराहए भवइ ॥

—औपपातिक १
सूत्र ५७

चत्तारि परमंगाणि

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥१॥

समावन्नाण संसारे, नाणागोत्तासु जाइसु ।
कम्मा नाणाविहा कट्टु, पुढो विस्संभिया पया ॥२॥

एगया देवलोएसु, नरएसु वि एगया ।
एगया आसुरं कायं, अहाकम्मेहिं गच्छइ ॥३॥

एगया खत्तिओ होइ, तओ चंडाल-वुक्कसो ।
तओ कीड-पयंगो य, तओ कुंथु-पिवीलिया ॥४॥

एवमावट्टजोणीसु, पाणिणो कम्मकिब्बिसा ।
न निविज्जंति संसारे, सव्वट्ठेसु व खत्तिया ॥५॥

अन्तिम समय में मारणान्तिक संलेखना (तप विशेष)
णा की आराधना करना। हे आयुष्मन् ! यह आगार सामा-
: धर्म कहा गया है। इस धर्म की शिक्षा (ग्रहण और
वन) में उपस्थित श्रमणोपासक या श्रमणोपासिका सम्यक्
रण करते हुए आज्ञा के आराधक होते हैं।

—औपपातिक सूत्र

चार श्रेष्ठतम अङ्ग

(१) इस संसार में परिभ्रमण करते हुए प्राणी को चार
तम अंगों की प्राप्ति होना सुदुर्लभ है। वे चार अंग इस प्रकार
१ मनुष्यत्व २ धर्मश्रवण ३ श्रद्धा और ४ संयम में पराक्रम
ा।

(२) संसार प्राप्त जीवों ने विविध गोत्रों और जातियों
विध प्रकार के कर्मों के फलस्वरूप जन्म-धारण किया है।
य जन्म-मरणों के द्वारा इस जीव ने लोक को सम्पूर्ण भर
है अर्थात् इसने अनन्त जन्म-मरण किये हैं।

(३) जीव अपने कर्मों के अनुसार कभी देवलोक में उत्पन्न
है, तो कभी नरक में पैदा होता है और कभी भवनपति
में जन्म धारण करता है।

(४) कभी वह क्षत्रिय कुल में जन्म लेता है, कभी चांडाल
वर्णसंकर होता है, कभी कीड़े-पतंगे की योनि धारण करता
र कभी कुन्थु और कीड़ी-मकोड़े की जाति में जन्म लेता है।

(५) कर्मों से दुखी बने हुए जीव इस प्रकार संसार की
य योनियों में जन्म-मरण करते हुए भी ठीक उसी तरह
ते नहीं हैं जैसे क्षत्रिय (राजा) सर्वस्व मिल जाने पर भी
अघाते।

कम्मसंगेहि संमूढा, दुक्खिया बहुवेयणा ।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मंति पाणिणो ॥

कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययंति मणुस्सयं ॥७॥

मणुस्सविग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं ॥८॥

आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परमदुल्लहा ।
सोच्चा नेयाउयं मग्गं, बहवे परिभस्सए ॥९॥

सुइं च लद्धुं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं ।
बहवे रोयमाणा वि, नो य णं पडिवज्जए ॥१०॥

माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्मं सोच्च सद्दहे ।
तवस्सी वीरियं लद्धुं, संवुडे निद्धुणे रयं ॥११॥

सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ ।
निव्वाणं परमं जाइ, घयसित्ते व पावए ॥१२॥

विगिंच कम्मुणो हेउं, जसं संचिणु खंतिए ।
सरीरं पाढवं [illegible]

(६) कर्मों के संग से मूढ़ बने हुए, दुखी और विपुल वेदना प्राणी अमानुषिक योनियों में विविध प्रकार से कष्ट पाते हैं।

(७) इस तरह क्रमशः दुःख सहन करने से कर्मों की हानि के कारण जीव शुद्धि प्राप्त होने पर मनुष्य-भव में जन्म करते हैं।

(८) मनुष्य का शरीर (भव) प्राप्त हो जाने पर भी ऐसे श्रवण का अवसर मिलना बड़ा कठिन है, जिसे सुनकर क्षमा और अहिंसा को स्वीकार किया जा सके।

(९) कदाचित् धर्म-श्रवण का अवसर प्राप्त हो गया तो पर श्रद्धा होना परम दुर्लभ है। न्याय मार्ग का श्रवण करने भी बहुत से प्राणी भ्रष्ट हो जाते हैं।

(१०) धर्मश्रुति और धर्म-श्रद्धा हो जाने पर भी उसके सार पुरुषार्थ करना परम दुर्लभ है। क्योंकि बहुत से प्राणी पर रुचि रखते हुए भी उसे अंगीकार नहीं करते हैं।

(११) मनुष्य भव में आकर, धर्म को सुनकर जो उस पर श्रद्धा करता है और उसके अनुसार पराक्रम करता है वह तपस्वी र संयमी कर्मरूपी रज-मैल को नष्ट कर देता है।

(१२) जो ऋजु—कपट-रहित और सरल होता है उसकी शुद्धि होती है। जो शुद्ध होता है वहीं धर्म रह सकता है। जैसे से सिञ्ची हुई अग्नि ऊर्ध्वगामी होती है वैसे ही यह शुद्ध त्मा परम निर्वाण को प्राप्त होता है।

(१३) कर्म के कारणों को नष्ट करके, क्षमा के द्वारा यश का संचय करो। ऐसे जीव पार्थिव शरीर को छोड़कर सकल-कर्म नष्ट होने पर मोक्ष में और कर्म शेष रह जाने पर देवलोक में जाते हैं।

चउरंगं दुल्लहं मत्ता, संजमं पडिवज्जिया ।
तवसा धुयकम्मंसे सिद्धे, हवइ सासए ॥१८॥

पुज्जो

सक्का सहेउं आसाइ कंटया अओमया उच्छहया नरेण
अणासए जो उ सहेज्ज कंटए वईमए कण्णसरे स पुज्जो।

समावयंता वयणाभिघाया कण्णं गया दुम्मणियं जणंति
धम्मो त्ति किच्चा परमग्गसूरे जिइंदिए जो सहइ स पुज्जो।

अलोलुए अक्कुहए अमाई अपिसुणे यावि अदीणवित्ती
नो भावए नो वि य भावियप्पा अकोउहल्ले य सया स पुज्जो।

गुणेहि साहू अगुणेहि असाहू गिण्हाहि साहू गुण मुंचऽसाहू
वियाणिया अप्पगमप्पएणं जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो।

तेसिं गुरूणं गुणसायराणं सोच्चाण मेहावी सुभासियाइं
चरे मुणी पंचरए तिगुत्तो चउक्कसायावगए स पुज्जो

(१४) इन चार अंगों को दुर्लभ जानकर, संयम को अंगीकार करके और तप के द्वारा कर्मांश को नष्ट करके जीव शाश्वत सिद्ध हो जाता है।

पूज्य कौन ?

१ आशा के वशीभूत होकर मनुष्य लोहमय काँटों को उत्साह पूर्वक सहन कर सकता है परन्तु जो किसी प्रकार की आशा रखे बिना कान में बाण के समान लगने वाले वचनरूपी काँटों को सहन करता है, वह पूज्य है।

२ एकत्रित होकर सम्मुख आते हुए वचन रूपी प्रहार कर्ण-प्राप्त होकर हृदय में खिन्नता उत्पन्न करते हैं परन्तु जो श्रेष्ठ अग्रगण्य शूरवीर और जितेन्द्रिय प्राणी धर्म समझ कर इन्हें सहन करता है, वह पूज्य है।

३ जो लोलुपता रहित है, जो इन्द्रजालादि से रहित है, जो माया रहित है, जो चुगलखोर नहीं है, जो दीनता बताने वाला नहीं है, जो दूसरों से अपनी प्रशंसा नहीं करवाता है, जो दूसरों के सामने अपनी प्रशंसा नहीं करता है और जो कुतूहल से रहित है, वह पूज्य है।

४ गुणों के द्वारा ही साधु होता है और अगुणों (दोषों) से असाधु होता है इसलिए साधु के गुणों को ग्रहण करो और असाधुता को छोड़ो। जो व्यक्ति इस प्रकार स्वयं अपनी आत्मा को समझाता है और जो रागद्वेष में (रागद्वेष के कारणों में भी) समभाव रखता है, वह पूज्य है।

(५) गुणों के सागर गुरुदेव के सुभाषित वचनों को सुनकर जो मुनि पंच महाव्रतों में लीन होकर विचरता है, तीन गुप्तियों से गुप्त होता है और चार कषायों से मुक्त होता है, वह पूज्य है।

भिक्खू

रोइए नायपुत्तवयए अप्पसमे मन्नेज्ज छप्पि का
पच य फासे महव्वयाइं पंचासवसंवरे जे स भिक्खू ।

चत्तारि वमे सया कसाए धुवजोगी य हविज्ज बुद्धव
अहणे निज्जायरूव-रयए गिहिजोगं परिवज्जए जे स भि

समदिट्ठी सया अमूढे अत्थि हु नाणे तव-संजमे
तवसा धुणइ पुराण-पावगं मण-वय-कायसुसंवुडे जे स भि

जो सहइ हु गामकंटए अक्कोस-पहार-तज्जणाओ य
भय-भेरव-सद्द सप्पहासे समसुहदुक्खसहे जे स भिक्खू ॥

हत्थसजए पायसजए वायसजए संजइंदिए ।
अज्झप्परए सुसमाहि-अप्पा सुत्तत्थं च वियाणइ जे स भिक्खू ।

भिक्षु कौन ?

(१) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के वचनों में रुचि रख कर छकाय के जीवों को अपनी आत्मा के समान समझता है, पांच महाव्रतों का पालन करता है और पांच आस्रवों को रोकता है, वह भिक्षु है।

(२) जो क्रोधादि चार कषायों को छोड़ता है, जो तीर्थङ्कर के वचनों में निश्चल योग वाला होता है, जो धनरहित है, जो सोना-चांदी आदि को छोड़ चुका है तथा जो गृहस्थ के साथ अधिक पूर्ण सम्बन्ध नहीं रखता है, वह भिक्षु है।

(३) जो सम्यग्दृष्टि जीव किसी प्रकार की शंका और भीति से मूढ़ न बन कर यह मानता है कि ज्ञान, तप और संयम (हितकारी) हैं, ऐसा मानकर जो तपस्या के द्वारा पुराने कर्मों को नष्ट करता है और जो मन-वचन और काया को अशुभ प्रवृत्ति से रोकने वाला है, वह भिक्षु है।

(४) जो इन्द्रियों को कांटे के समान दुःखरूप प्रतीत होने वाले विषयों को, आक्रोश, गाली, प्रहार और तर्जना को सहन कर लेता है, वैताल आदि के भयोत्पादक शब्द और अट्टहास आदि को सुनकर भी जो अविचलित रहता है तथा जो सुख और दुःख को समभाव पूर्वक सहन कर लेता है, वह भिक्षु है।

(५) जो हाथों को संयम में रखता है, चरणों को संयम में रखता है, शरीर को संयम में रखता है और इन्द्रियों को संयम में रखता है, जो अध्यात्म में लीन रहता है, आत्मा को समाधि में रखता है तथा जो सूत्रार्थ का ज्ञाता है, वह भिक्षु है।

उपहिम्मि अमुच्छिए अगिद्धे अन्नायउंछं पुलनिपुलाए,
कयविक्कयसंनिहिओ विरए सव्वसंगावगए य जे स भिक्खू

न जाइमत्ते न य रूवमत्ते न लाभमत्ते न सुएण मत्ते,
मयाणि सव्वाणि विवज्जयंतो धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू

पवेयए अज्जपयं महामुणी धम्मे ठिओ ठावयई परं वि
निक्खम्म वज्जेज्ज कुसीललिंगं न यावि हास कुहए स भिक्खू

त देहवासं असुइं असासयं सया चए निच्चहियट्ठियप्पा
छिंदित्तु जाइमरणस्स बंधणं उवेइ भिक्खू अपुणागमं

णेमि-रहणेमिज्जं

'सोरियपुरम्मि' नयरे आसि राया महड्ढिए।
वसुदेवुत्ति नामेण राय-लक्खण-संजुए ॥१॥

तस्स भज्जा दुवे आसी रोहिणी देवई तहा।
तासिं दोण्हं दुवे पुत्ता इट्ठा राम-केसवा ॥२॥

सोरियपुरम्मि नयरे आसी राया महड्ढिए।
'समुद्दविजए' नामं राय-लक्खण-संजुए ॥३॥

(६) जो व्यक्ति वस्त्र-पात्रादि उपधि में ममत्व नहीं रखता आसक्त नहीं होता है, अज्ञात-भिक्षा दरिद्रता के कुलों में भिक्षा लिए जाता है, संयम को निस्सार बनाने वाले दोषों से दूर ता है क्रय-विक्रय और संग्रह से अलग रहता है तथा जो सब र के संगों से मुक्त है, वह भिक्षु है।

(७) जो जाति का अभिमान नहीं करता, रूप का अभि- नहीं करता, लाभ का अभिमान नहीं करता, ज्ञान का मान नहीं करता, जो सब प्रकार के अभिमानों का त्याग धर्मध्यान में लीन रहता है, वह भिक्षु है।

(८) जो महामुनि (परोपकार के लिए) शुद्ध धर्म का उप- ता है, जो स्वयं धर्म में स्थित होता है और दूसरों को भी स्थित करता है, जो प्रव्रज्या लेकर आरम्भ आदि कुशील चेष्टा को छोड़ता है तथा उपहास और कुचेष्टाओं से दूर है, वह भिक्षु है।

(९) सदा हित-सम्यग्दर्शनादि में अपनी आत्मा को स्थित वाला मुनि, अपवित्र और अनित्य देह के ममत्व को सदा है और जन्म-मरण के बन्धन को छेद कर वह भिक्षु सिद्ध प्राप्त करता है जहाँ से पुन. आगमन नहीं होता।

नेमि-रथनेमि

(१) शौर्य पुर नगर में राजा के लक्षण से सम्पन्न वसुदेव महाऋद्धि वाले राजा थे।

(२) उनके दो पत्नियाँ थीं। उनका नाम रोहिणी और था। उन दोनों के राम और केशव नाम के दो प्रिय पुत्र थे।

(३) शौर्यपुर नगर में राज-लक्षण सम्पन्न समुद्रविजय महर्द्धिक राजा थे।

तस्स भज्जा 'सिवा' नाम तीसे पुत्तो महायसो
भगवं 'अरिट्ठनेमि' त्ति लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

सोऽरिट्ठनेमि नामो उ लक्खणस्सरसंजुओ।
अट्ठसहस्स लक्खणधरो गोयमो कालगच्छवी॥

वज्जरिसहसंघयणो समचउरंसो झसोयरो।
तस्स राइमईकन्नं जायई केसवो जिवो ॥६॥

अह सा रायवरकन्ना सुसीला चारुपेहिणी।
सव्वलक्खणसंपन्ना विज्जुसोयामणिप्पभा ॥७॥

अहाह जणओ, तीसे वासुदेवं महिड्ढियं।
इहागच्छउ कुमारो जा से कन्नं ददामि हं ॥८॥

सव्वोसहिहि ण्हविओ कय-कोउयमंगलो।
दिव्वजुयलपरिहिओ आभरणेहिं विभूसिओ ॥९॥

मत्तं च गंधहत्थि वासुदेवस्स जेट्ठगं।
आरूढो सोहए अहियं सिरे चूडामणी जहा ॥१०

अह ऊसिएण छत्तेण चामराहि य सोहिए।
दसार-चक्केण य सो सव्वओ परिवारिओ ॥११॥

(४) उनके 'शिवा' नाम की पत्नी थी। उनके अरिष्टनेमि नामक महायशस्वी पुत्र था। वे अरिष्टनेमि भगवान् लोक के नाथ और इन्द्रियों का दमन करने वालों में ईश्वर तुल्य थे।

(५) वे अरिष्टनेमि उत्तम लक्षण और सुस्वर से युक्त थे और एक हजार आठ उत्तम लक्षणों को धारण करने वाले थे। वे गौतम गोत्र के थे और उनके शरीर का वर्ण श्याम था।

(६) वज्रऋषभ नाराच संहनन (दृढ शरीर) वाले और समचतुरस्र संस्थान (चारों तरफसे जिस शरीर की आकृति समान हो) वाले थे। उनका पेट मछली के समान रमणीय था। उन अरिष्टनेमि के साथ विवाह के लिए केशव (कृष्ण) ने राजीमती कन्या की मांग की।

(७) वह राजीमती कन्या उत्तम कुल के राजा उग्रसेन की पुत्री थी। वह सुशीला, सुनयना और स्त्रियों के सर्वोत्तम लक्षणों से सम्पन्न थी। उसकी कान्ति बिजली के समान तेजस्वी और मनोहर थी।

(८) उस राजीमती कन्या के पिता ने विपुल ऋद्धि वाले वासुदेव को कहलाया कि यदि (नेमिनाथ) कुमार यहाँ विवाह के लिए पधारें तो मैं कन्या दे सकता हूँ।

(९) नेमिनाथ को उत्तम प्रकार की औषधियों से स्नान कराया, मंगल कार्यों के साथ तिलक आदि किया, उत्तम प्रकार के वस्त्र पहनाये और उत्तम आभूषणों से विभूषित किया।

(१०) वासुदेव राजा के सब से बड़े मदोन्मत्त गंध-हस्ति पर वे आरूढ हुए। जिस प्रकार मस्तक पर चूडामणि शोभा देता है उस तरह वे हाथी पर शोभा देने लगे।

(११) उनके ऊपर उत्तम छत्र और चँवर ढुल रहे थे, और वे दस दशार्ह आदि यादव परिवार से चारों ओर घिरे हुए थे।

चउरंगिणीए सेणाए रइयाए जहक्कमं ।
तुरियाण सन्निनाएण दिव्वेण गयणं फुसे ॥

एयारिसाए इड्ढिए जुत्तीए उत्तमाइ य ।
नियगाओ भवणाओ निज्जाओ वण्हिपुंगवो ॥१३॥

अह सो तत्थ निज्जंतो दिस्स-पाणे भयद्दुए ।
वाडेहिं पंजरेहिं च सन्निरुद्धे सुदुक्खिए ॥१४॥

जीवियंतं तु संपत्ते मंसट्ठा भक्खियव्वए ।
पासित्ता से महापन्ने सारहिं इणमब्बवी ॥१५॥

कस्स अट्ठा इमे पाणा एए सव्वे सुहेसिणो ।
वाडेहिं पंजरेहिं च सन्निरुद्धा य अच्छहिं ? ॥१६॥

अह सारही तओ भणइ एए भद्दा उ पाणिणो ।
तुज्झ विवाहकज्जंमि भोयावेउं बहुं जणं ॥१७॥

सोऊण तस्स वयणं बहुपाणिविणासणं ।
चिंतेइ से महापन्नो साणुक्कोसे जिए हिऊ ॥१८॥

जइ मज्झ कारणा एए हम्मंति सुबहू जिया ।
न मे एयं तु निस्सेसं परलोगे भविस्सइ ॥१९॥

(१२) उनके साथ हाथी–घोड़ा–रथ और पैदल–यों चार प्रकार की क्रमशः सुव्यवस्थित सेना थी। उस समय विविध बाजों की दिव्य ध्वनि से आकाश–मण्डल गूंज रहा था।

(१३) इस प्रकार सर्वोत्तम समृद्धि और शरीर की उत्तम कान्ति से सुशोभित यादवकुल के आभूषण रूप नेमिकुमार अपने भवन से (विवाह के लिए) बाहर निकले।

(१४) (श्वसुरगृह में लग्न मण्डप के पास पहुंचने के पूर्व) मार्ग में जाते-जाते बाड़ों और पिंजरों में बंधे हुए दुखी और मरण के भय से त्रास पाते हुए प्राणियों को उन्होंने देखा।

(१५) मास–भक्षण करने के लिए घेरे गये और मृत्यु के समीप पहुंचे हुए उन प्राणियों को देखकर उन बुद्धिमान नेमि–कुमार ने सारथी से ऐसा कहा।

(१६) सुख के अभिलाषी ये सब प्राणी किसलिए बाड़ों और पिंजरों में रोक कर रक्खे गये हैं?

(१७) तब सारथी ने कहा– ये सब निर्दोष जीव आपके विवाह-कार्य में आये हुए बहुत से लोगों को भोजन कराने के लिए रोक कर रक्खे गये हैं।

(१८) 'आपके विवाह के लिए बहुत जीवों का विनाश!" सारथी के ये वचन सुनकर सब जीवों पर अनुकम्पा करने वाले महा बुद्धिमान नेमिकुमार ऐसा विचारने लगे:–

(१९) यदि मेरे कारण से ये असंख्य जीव मारे जाते हैं तो यह काम मेरे लिए (इसलोक और) परलोक में लेशमात्र भी कल्याण करने वाला नहीं है।

भीया य सा तहिं दट्ठुं एगंते संजयं तयं।
बाहाहि काउं संगोप्फं वेवमाणी निसीयइ ॥३

अह सोऽवि रायपुत्तो समुद्दविजयंगओ।
भीयं पवेवियं दट्ठुं इमं वक्कं उदाहरे ॥३६

रहनेमी अहं भद्दे ! सुरूवे ! चारुभासिणि !
ममं भयाहि सुयणु न ते पीला भविस्सइ ॥३

एहि ता भुंजिमो भोए माणुस्सं खु सुदुल्लहं
भुत्तभोगी तओ पच्छा जिणमग्गं चरिस्सामो।

दट्ठूण रहनेमि त भग्गुज्जोयपराजियं।
राईमई असंभंता अप्पाणं संवरे तहिं ॥३९॥

अह सा रायवरकन्ना सुट्ठिया नियमव्वये।
जाई कुलं च सीलं च रक्खमाणी तयं वए ॥

जइ सि रूवेण [illegible]
तहाऽसि [illegible]

धिरत्थु तेऽजसोकामी जो तं जीवियकारणा।
वंतं इच्छसि आवेउं सेयं ते मरणं भवे ॥४२॥

(३५) एकान्त में उस संयमी को देखकर वह सहसा डरी। [illegible] बाहुओं से शरीर का गोपन कर भय से कांपती हुई बैठ गई।

(३६) उस समय समुद्रविजय के पुत्र राजपुत्र रथनेमि [illegible] को भयभीत बनी हुई और कांपती हुई देखकर इस [illegible] बोले.--

(३७) हे सरले! मैं रथनेमि हूँ! हे रूपवति! हे मंजुल-[illegible]! मुझे अंगीकार करो। हे कोमलाङ्गि! तुम्हें कुछ भी [illegible] नहीं होगा।

(३८) यह मनुष्य-भव दुर्लभ है इसलिए आओ! हम भोग [illegible]। भोग भोग लेने के बाद अपन दोनों पुनः जिनमार्ग का [illegible] करेंगे (संयम ले लेंगे।)

(३९) इस प्रकार संयम में कायर और विकार जीतने [illegible] उद्योग में पराजित हुए रथनेमि को देख कर राजीमती स्वस्थ [illegible] और विक्षुब्ध न होकर शरीर को वस्त्रों से आच्छादित किया।

(४०) वह राजीमती राजकन्या अपने नियम और व्रत में [illegible] रहकर जाति, कुल और शील की रक्षा करती हुई रथनेमि [illegible] इस प्रकार कहने लगी:----

(४१) यदि तुम रूप में साक्षात् कामदेव भी क्यों न हो, [illegible] लीला में साक्षात् नलकुबेर भी क्यों न हो, यदि तुम साक्षात् [illegible] शक्रेन्द्र भी क्यों न हो, मैं तुम्हारी इच्छा नहीं करती।

(४२) हे अपयश के अभिलाषी! तुम्हें धिक्कार है, जो [illegible] तुम वासनामय जीवन के लिए वमन किये हुए भोगों को भोगने की इच्छा करते हो। ऐसे पतित जीवन से तो तुम्हारा मर जाना अधिक उत्तम है।

अहं च भोयराजस्स, तं च सि अंधगवण्हिणो
मा कुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर ॥

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारं
वाया विद्धो व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥

गोवालो भंडवालो वा, जहा तद्दव्वणीसरो ।
एवं अणिस्सरं तं पि, सामण्णस्स भविस्ससि ॥

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाए सुभासियं ।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥४६॥

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ ।
सामण्णं निच्चलं फासे, जावज्जीवं दढव्वओ ॥

उग्गं तवं चरित्ताण, जाया दोण्णि वि केवली ।
सव्वं कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥

(४३)मैं भोजकविष्णु की पौत्री और उग्रसेन की पुत्री और तुम अंधकविष्णु के पौत्र और समुद्रविजय के पुत्र हो। गन्धन कुल के सर्प के समान वमन किये हुए को भोगने वाले हों। हे संयमीश्वर! संयम में निश्चल बनो!

(४४)हे मुनि! जिन-जिन स्त्रियों को देखोगे और उन्हें कर कामभोग की इच्छा करोगे तो समुद्र के किनारे रहे हुए वृक्ष की तरह तुम्हारी आत्मा अस्थिर हो जायगी। (अतः हारा पतन हो जायगा।)

(४५)जिस प्रकार ग्वाला गायों का स्वामी नहीं और गों पशुओं का स्वामी नहीं होता इसी तरह यदि तुम भी य की अभिलाषा करते रहोगे तो चारित्र के स्वामी न होकर न वेश के स्वामी रह जाओगे।

(इसलिए हे रथनेमि! क्रोध, मान माया और लोभ को कर, इन्द्रियों को वश में रखकर तुम्हारी आत्मा को काम- गों से निवृत्त करो।)

(४६)ब्रह्मचारिणी साध्वी के ऐसे आत्मस्पर्शी सुभाषित नों को सुनकर रथनेमि धर्म में उसी तरह स्थिर हो गये जैसे न्मत्त हाथी अंकुश से वश में हो जाता है।

(४७)तब से रथनेमि मन, वचन और काया से सुसंयमी र जितेन्द्रिय बन गये। वे जीवन पर्यन्त अपने व्रत में अखण्ड और चारित्र का निश्चलता से पालन करते रहे।

(४८)उग्र तप का आचरण कर रथनेमि और राजीमती नों केवली हो गये और सब कर्मों का क्षय करके दोनों उत्तम द्धगति को प्राप्त हुए।

एवं करेंति सबुद्धा पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु जहा सो पुरिसुत्तमो ॥४१

सद्दालपुत्ते कुंभकारे

पोलासपुरे नाम नयरे। सहस्संबवणो नाम उ
जियसत्तू राया।

तत्थ णं पोलासपुरे नयरे सद्दालपुत्ते नाम कुं
आजीविओवासए परिवसइ। आजीवियसमयंसि
गहियट्ठे पुच्छियट्ठे विणिच्छियट्ठे अभिगयट्ठे अट्ठि
पेम्माणुरागरत्ते य।

अयमाउसो! आजीवियसमए अट्ठे,अयं परमट्ठे
अणट्ठे त्ति आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणो विहर

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीवियोवासगस्स ए
हिरण्णकोडी निहाणपउत्ता, एक्का वड्ढिपउत्ता, ए
पवित्थरपउत्ता, एक्के वए दसगोसाहस्सिएणं वएणं।

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स अग्गि
मित्ता नामं भारिया होत्था।

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पोलास
पुरस्स नगरस्स बहिया पंच कुंभकारावणसया होत्था।

(११) जिस प्रकार पुरुषोत्तम रथनेमि ने विषय-भोग से मन हटाया इसी तरह पण्डित, विचक्षण और तत्वज्ञ भी भोगों से निवृत्त होकर परम पुरुषार्थ करें।

सकडालपुत्र कुम्भकार

पोलासपुर नामक नगर था। वहाँ सहस्राम्रवन नामका था। वहाँ जितशत्रु नामक राजा था।

उस पोलासपुर नगर में सकडाल पुत्र नाम का कुम्भकार था। वह आजीविकमत का उपासक था। वह आजीविक ३ में लब्धार्थ, गृहीतार्थ, पृष्टार्थ, विनिश्चितार्थ और ज्ञातार्थ आजीविक-सिद्धान्त के प्रति उसकी रग-रग में अनुराग हुआ था। वह मानता था कि--

"हे आयुष्मन्! यह आजीविक सिद्धान्त ही परमार्थ है, शेष सब अनर्थ है।"

इस तरह आजीविक सिद्धान्त से आत्मा को भावित हुआ वह रहता था।

उस आजीविकोपासक सकडालपुत्र के पास एक कोड़ मैये का धन खजाने में, एक कोड़ सोनैये का धन व्यापार में, एक कोड़ सोनैये का धन गृहसामग्रियों के रूप में था। उसके अतिरिक्त उसके पास दस हजार गायों का एक व्रज था।

उस आजीविकोपासक सकडाल के अग्निमित्रा नाम की भार्या थी।

उस आजीविकोपासक सकडालपुत्र के पोलासपुर नगर बाहर पाँच सौ के मिट्टी के बर्तनों की दुकानें थीं।

ट करना और नया बंधन नहीं करना इसी से 'परमात्म कते हैं।

जैन मुनि ४२ दोष टाल कर आहार पानी ग्रहण करते हैं।

उद्गम दोष (गृहस्थ द्वारा लगने वाले)

१ आहाकम्म–(आधा कर्मी) सर्वलिंगी साधुओं के लि बनाया हुआ आहार-पानी।

२ उद्देसिय–(उद्देशिक) साधु (नाम खोलकर) के लिये ह बनाया हुआ आहार-पानी।

३ पुईकम्मे–(पूतिकर्म) विशुद्ध आहार में आधाकर्मी का अंश मिला हुआ आहार पानी।

४ मीसजाए–(मिश्रजात) साधु और गृहस्थ के लिए शामिल बना हुआ आहार पानी।

५ ठवणा (स्थापना) साधु के निमित्त सब छोड़ा हुआ आहार पानी।

६ पाहुडिया (प्राभृतिका) साधु को आहार देने के लिये मेहमान का जीमणवार आगे पीछे करके तैयार किया आहार पानी।

७ पाओअर (प्रादुष्करण) अन्धकार में प्रकाश करके दिया हुआ।

८ कीए (क्रीत) मोल खरीदा हुआ आहार पानी।

९ पामिच्चे (प्र[illegible] साधु के निमित्त उधार [illegible]

१० परियट्टि[illegible]) साधु के लिए [illegible] को अदर[illegible] आहार [illegible]

११ अभिहडे (अभ्याहृत)-किसी अन्य गांव या घर से मुनि के सामने लाया हुआ आहार-पानी।

१२ उब्भिन्ने (उद्भिन्न)-मोयरे या बर्तनादि में मिट्टी आदि छाए हुए पदार्थों को उघड़ कर दिया हुआ।

१३ मालाहडे (मालाहृत) मेडी पर चढ़ कर कठिनता से उतर कर या बहुत नीचे से कष्ट पूर्वक निकाला हुआ।

१४ अच्छिज्जे (आछिद्य) निर्बल से छिना हुआ।

१५ अणिसिट्ठे (अनिसृष्ट)-साझे (भाग) की चीज साझेदार की मर्जी बिना का।

१६ अज्झोयरए (अध्यवपूर)-अपने लिये बनाते हुए साधु के निमित्त कुछ अधिक बनाया हुआ।

सोलह उत्पादना दोष-(लेने वाले साधु से लगने वाले)

१ धाई (धात्री)-गृहस्थ के बाल बच्चों को धाई की तरह खेला कर आहार-पानी लेना।

२ दूई (दूती)-गृहस्थ के संदेश उसके स्वजनों से कह कर आहार पानी लेना।

३ निमित्ते (निमित्त)-निमित्त द्वारा लाभ अलाभ बता कर लेना।

४ आजीवे (आजीविका) अपनी जाति, कुल आदि बता कर लेना।

५ वणीमगे (वनीपक)-मंगते (भिखारी) की तरह दीनता से लेना।

६ तिगिच्छे (चिकित्सा)-वैद्य की तरह औषधादि बता कर लेना।

७ कोहे (क्रोध-पिण्ड)-डराकर या शाप देकर लेना।
८ माणे (मान पिण्ड)-छल-कपट करके आहारादि लेना।
९ मायें (माया-पिण्ड)-छल-कपट करके आहारादि लेना।
१० लोहे (लोभ-पिण्ड)-लोभ से अच्छा २ या अधिक लेना।
११ पुव्विपच्छासंथव (पूर्व पश्चात्संस्तव)-पहिले या पीछे दाता की तारीफ करके लेना।
१२ विज्जा (विद्यापिण्ड)-वैद्यप्रयोग या विद्या बता कर लेना।
१३ मंते (मंत्र-पिण्ड)-मंत्रादि साधकर या देकर आहार लेना।
१४ (चूर्ण योग)-अदृश्य हो जाने आदि का अंजनादि देकर लेना।
१५ जोगे (योग पिण्ड)-योग-सिद्धियाँ बता कर आहारादि लेना।
१६ मूल कम्मे (मूल कर्म)-नक्षत्रादियोग मूल स्नानादि बता कर लेना।

दस एषणा दोष-(साधु और दाता दोनों से लगने वाले)

१ संकिय (शंकित)-लेते देते सदोषता की शंका पड़ने पर भी लेना।
२ मक्खिय (म्रक्षित) हस्त रेखा, बाल आदि में सचित पानी आदि लगे हुए के हाथ से आहार लेना।
३ निक्खित्त (निक्षिप्त)-सचित्त वस्तु पर रक्खा हुआ लेना।
४ पिहिय (पिहित)-सचित वस्तु से ढंका हुआ लेना।
५ साहरिय (संहृत)-बिना भरे हुए-कोरे-भाजन (बर्तन) से लेना।

६ दायग (दायक)-आरंभ कार्य करते हुए से लेना।
७ उम्मीसे (उन्मिश्रित)-सचित्त अचित्त मिली हुई वस्तु लेना।
८ अपरिणय (अपरिणत)-शस्त्र जिसमें परिणत न हुआ ऐसा लेना।
९ लित्त (लिप्त)-तुरन्त की लीपी हुई जगह पर या उसको लांघ कर लेना।
१० छड्डिय (छर्दित)-जमीन पर डालते या बिखरते हुए लेना।

उपरोक्त ४२ दोष टाल कर (निर्दोष) आहार पानी को समणी साधु-साध्वीजी ग्रहण कर लेवे और पांच मण्डल दोष टाल कर (आहार-पानी) भोगवे ये निम्न प्रकार हैः—

पांच मण्डल दोष (खाते पीते समय के)—

१ संजोयणा (संयोजन) लोलुपता वश भिन्न २ पदार्थों को मिला कर खाना। दूध में शक्कर आदि।
२ अप्पमाणे (अप्रमाण)-प्रमाण से अधिक भोजन-पान करना।
३ इगाले (अंगाल)-सरस आहार की या दान की प्रशंसा करते करते खाना।
४ धूमे (धूमे)-निरस आहार की निन्दा या घृणा करते २ अप्रसन्नता पूर्वक खाना।
५ अकारणे (अकरण)-क्षुधा वेदनीय आदि छ. कारण बिना ही भोजन करना।

सम्वाद-विभाग

अनाथी मुनि अने श्रेणिक
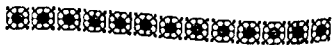
राजा श्रेणिकः—

तरुणोसि अज्जो ! पव्वइओ, भोगकालम्मि संजया !
उवट्ठिओसि सामण्णे, एयमट्ठं सुणेमि ता ॥
मुनि—अणाहो मि महाराय ! नाहो मज्झ न विज्जई ।
अणुकम्पगं सुहिं वा वि कंचि नाभिसमे महं ॥
राजा (राया):—(पहसिओ) एवं ते इड्ढिमंतस्स कहं नाहो
न विज्जई ?
होमि नाहो भयंताणं भोगे भुंजाहि संजया !
मित्तनाईपरिवुडो माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥
मुनि:—अप्पणा वि अणाहो सि सेणिआ ! मगहाहिवा !
अप्पणा अणाहो सन्तो कस्स नाहो भविस्ससि ॥
राजा रायाः-अस्सा हत्थी मणुस्सा मे पुरं अंतेउरं च मे ।
भुंजामि माणुसे भोगे आणा इस्सरियं च मे ॥
एरिसे संपयग्गम्मि सव्वकामसमप्पिए ।
कहं अणाहो भवइ मा हु भन्ते ! मुसं वए ॥
मुनि:—न तुमं जाणे अणाहस्स अत्थं पोत्थं च पत्थिवा !
जहा अणाहो भवई सणाहो वा नराहिवा ॥
सुणेह मे महाराय ! अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
जहा अणाहो भवई जहा मेयं पवत्तियं ॥

मुनि है मगधेश श्रेणिक नृप, तू है आप अनाथ ॥
अनाथ होते जो स्वयं, कैसे बनते नाथ ? १३
राजा–अगणित गज अरु अश्व हैं, अरु हूं मैं मगधेश।
सुंदरियाँ मनहारिणीः अन्तःपुर प्रदेश ॥ १४
अक्षय मेरे कोष हैं, वर्ते दूर मम आन।
अनाथ कहना असत्य है, मानो कृपानिधान॥ १५
मुनि–राजा आप न जानते, अनाथ का गूढार्थ।
सनाथ कैसे होत हैं, अनाथ का क्या अर्थ ? १६
हे महाराजा ! सुन, तू एक ध्यान से बात।
कैसे हुआ अनाथ मैं, सुन मेरी है बात॥ १७
कौसंबी नामा नगर, सुन्दर श्रेष्ठ जहाँ।
प्रभूत धनसंचय मिला मेरा बसना वहाँ॥ १८
यौवन में मुझ को हुआ, विपुल आंख का दुःख।
दाह हुआ सर्वांग में, चैन बना नहीं मुख ॥ १९
तीक्ष्ण शस्त्र घूण देह में, क्रोधित दुश्मन आय।
जैसे घुमावे जोर से, दुःख सहा नहीं जाय॥ २०
दारुण दाय ज्वर वेदना, इन्द्रवज्र को मात।
मर्मों में व्याप्त थी मस्तक भी था अताग्त ॥ २१
मंत्रविज्ञ अरु वैद्यजी, आये आचारज।
शस्त्र कुशल किये निष्णात भी, करने आये काज॥ २२
कुशल किये उपचार सब, निपुणता से हितकार।
फिर भी दुःखमुक्त न हुआ, अनाथता अवधार॥ २३
पिता मुझ दुःख को मेटने देते धन भंडार।
दुःख से मुक्ति नहीं हुई, अनाथता अवधार॥ २४

पुत्र शोक से झूरती, माता दुःखित अपार ।
तब भी दुःख से नहीं छूटा, अनाथता अवधार । २५
छोटे बड़े मम भ्रात भी, दुःख में डूबे अपार ।।
मम दुःख कम नहीं कर सके, अनाथता अवधार ।
बहिनें छोटी मोटी सब, रंज करे महाराय ! ।।
पर मम दुःख मेटा नहीं, अनाथता यह राय ! । २७
अनेक ऐसी पीर को, भोगी बारंबार ।।
वैसी बहुविध वेदना, जग में अति दुःखकार ।
एक कर मैं संकल्प किया, जो होवे दुःख दूर ।।
होऊँ संयति शान्त दान्त, गृहस्थाश्रम से दूर ।
चिंतन चित्त में धार कर, सोया हे महाराज ! ।।
क्रमशः पीड़ा घट गई, बीती जैसे रात ।
प्रभात में मैं स्वस्थ था, सब से आज्ञा धार ।।
प्रव्रजित हो शान्ति धरी लिया धर्म आधार । ३४
तब माना मैं नाथ हूँ । अपना पर का और ।।
स्थावर त्रस सब जीव का, सनाथ आनंद और ।
आत्मा नदी है वैतरणी, आत्मा शामली वृक्ष सम ।।
आत्मा कामदुधा है, आत्मा नन्दन वन सम ।
आत्मा कर्ता भुक्तात्मा, दुःख सुख से प्रत्यावित ।।
आत्मा मित्र अरु वैरी, 'दुःप्रतिष्ठ' सुप्रतिष्ठित ।
निकराय-महर्षि ! पाया मानव भव, पाये लाभ भी प्राप्त है ।।
सनाथ सबान्धव सच्चे, जिन पथ पाये प्राप्त है ।
संयति सर्व जीवों के, नाथ अनाथ के नाथ है ।।
क्षमाऊँ चाहूँ आज्ञा मैं महात्मन् ध्यान करूँ मैं ।

१ दुर्मार्गगामी, २ सन्मार्गगामी ।

प्रश्न पूछ कर आपको, ध्यान में बाधक मैं बना ॥
दिया निमंत्रण भोग का, मांगूं धृष्ट क्षमापना । ५७

× + × ×

[1]राजसिंह ने कीनी स्तुति,* अणगार सिंह की भक्ति से ।
राजा स्वजन धर्म रक्त, मुनि रहे निर्मल चित्त से ॥
विकसित रोमकूपों से, प्रदक्षिणा की नरपति ।
[1]शिरसाभिवदन करके, विदा हुआ वो भूपति ॥
गुण समृद्ध त्रिगुप्त मुनि को, [3]त्रिदंड से निवृत्ति ।
विमुक्त विचरे [4]विहग सम, निर्मोह [5]वसुधा-धृत्ति ॥

---

[1]श्रेणिक राजा ने * अनाथी मुनिराज को । १ सिर झुका कर वदन, २ मन-वचन-काय-गुप्ति से युक्त, ३ मन-वच-काय के दंड, ४ पक्षी, ५ पृथ्वी जैसी क्षमा-धैर्य ।

जयघोष-विजयघोष संवाद

(उत्तराध्ययन अध्य० २५ से)

माहणकुलसंभूओ, आसि विप्पो महाजसो ।
जायाई जमजन्नम्मि जयघोसित्ति नामओ ॥ १
इंदियग्गामनिग्गाही मग्गगामी महामुणी ।
गामाणुगामं रीयंते पत्ते वाणारसिं पुरिं ॥ २
अह तेणेव कालेणं पुरीए तत्थ माहणे ।
विजयघोसित्ति नामेण जन्नं जयइ वेयवी ॥ ४
अह से तत्थ अणगारे मासक्खमणपारणे ।
विजयघोसस्स जन्नम्मि भिक्खमट्ठा उवट्ठिए ॥ ५
(विजयघोसो विप्पो जयघोसं मुणिं इमं वयणमब्बवी)

जयघोसो विप्पो:—

न हु दाहामि ते भिक्खं, भिक्खू जायाहि अन्नओ ।
जे य वेयविऊ विप्पा, जन्नट्ठा य जे दिया ।
जोइसंगविऊ जे य, जे य धम्माण पारगा ॥ ७
जे समत्था समुद्धत्तुं परमप्पाणमेव य ।
तेसिं अन्नमिणं देयं भो ! भिक्खू ! सव्वकामियं ॥ ८

(जयघोसो तवस्सी मुणी:—

न वि जाणासि वेयमुहं, न वि जन्नाण जं मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं जं च, जं च धम्माण वा मुहं ॥ ९

जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
न ते तुमं वियाणासि, अह जाणासि तो भण ॥ १०

विजयघोसो विप्पोः—

वेयाणं च मुहं बूहि, बूहि जन्नाण जं मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं बूहि, बूहि धम्माण वा मुहं ॥ ११
जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव यं ।
एवं मे ससय सव्व साहू ! कहसु पुच्छिओ ॥ १२

जयघोसो तवस्सी मुणीः—

अग्गिहुत्तमुहा वेया, जन्नट्ठी वेयसा मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं चंदो, धम्माण कासवो मुहं ॥ १६
जो लोए बम्भणो वुत्तो, अग्गीव महिओ जहा ।
सया कुसलसंदि , तं वयं बूम माहणं ॥ १९
जो न सज्जइ आगतुं पव्वयंतो न सोयइ ।
रमइ अज्जवयणम्मि, तं वयं बूम माहणं ॥ २०
जायरूवं जहा मट्ठं, निद्धतमलपावगं ।
रागदोसभयाईयं, तं वयं बूम माहणं ॥ २१
तवस्सियं किसं दंतं, अवचियमंससोणियं ।
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं, तं वयं बूम माहणं ॥ २२
तसपाणे वियाणेत्ता, संगहेण, य थावरे ।
जो न हिंसइ तिविहेण, तं वयं बूम माहणं ॥२३

कोहा वा जइ वा हासा,लोहा वा जइ वा भया।
मुसं न वयई जो उ, तं वयं बूम माहणं ॥ २४
चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं।
न गिण्हइ अदत्तं जे, तं वयं बूम माहणं ॥२५
दिव्वमाणुस्सतेरिच्छं, जो, न सेवइ मेहुणं।
मणसा कायवक्केणं, तं वयं बूम माहणं ॥२६
जहा पोमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥२७
अलोलुयं मुहाजीविं, अणगारं अकिंचणं।
असंसत्तं गिहत्थेसु, तं वयं बूम माहणं ॥२८
जहित्ता पुव्वसंजोगं, नाइसंगे य बंधवे।
जो न सज्जइ भोगेसुं तं वयं बूम माहणं ॥२९
पसुबंधा सव्ववेया य,जट्ठं च पावकम्मुणा।
न तं तायंति दुस्सीलं,कम्माणि वलवंति हि।॥३०
न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो।
न मुणी रण्णवासेणं कुसचीरेण तावसो ॥३१
समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण उ मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥३२
कम्मणा बंभणो होइ,कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥३३

एवं से विजयघोसो, जयघोसस्स अन्तिए ।
अणगारस्स निक्खन्तो, धम्मं सोच्चा अणुत्तरं ।।४४।।
खवित्ता पुव्वकम्माइं संजमेण तवेण य ।
जयघोसो विजयघोसो, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ।।४५।।

जयघोष (तपस्वी मुनि) और विजयघोष

(याज्ञिक ब्राह्मण) का संवाद

(जयघोष और विजयघोष; दोनों ब्राह्मण कुल में जन्मे थे। वाराणसी उनका जन्मस्थान था। जयघोष ने एकदा गीता के रहस्य को पहिचान लिया। वे ज्ञानयज्ञ और संयमयज्ञ में राचने लगे। जैन साधु होने के बाद उन्होंने इच्छानिरोध रूप तप-अग्नि में अपने सब आशा तृष्णा रूप मल भस्मीभूत कर दिये। वे विचरते २ अपनी जन्मभूमि में पधारते हैं। विजयघोष विप्र की यज्ञशाला में वे भिक्षार्थ पहुँच जाते हैं। पहिले तो विजयघोष विप्र भिक्षा देने से इन्कार होते हैं, परन्तु उनके प्रभाव, पवित्रता, त्याग और तप से सब प्रभावित होते हैं। यज्ञशुद्धि आदि का वे रहस्य समझाते हैं। इस पर से विजयघोष बोध पाकर त्रिम-मार्ग पर आता है। यह वर्णन इस संवाद में है।)

(उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन २५ के आधार पर से)

जन्मे ब्राह्मण कुल में, ऐसे विप्र महायश;
विचरे महिमंडल विषे, जयघोष नामा सुयश ॥१॥
इन्द्रिय विषय निग्रह करे, जिनपथगामी महामुनि;
ग्रामानुग्राम विचरते, पहुँचते वाणारसी पुनि ॥२॥
उसी समय उस नगर में, बसते कयो ब्राह्मण;
विजयघोष वेदज्ञ वहाँ, मर्मज्ञ था यज्ञ का ॥४॥
जयघोष तपस्वी वहाँ पधारे, मास खमण पारण हेतु;
विजयघोष की यज्ञशाला में आय कहे भिक्षा दे तू ॥५॥

विजयघोष विप्र जयघोष मुनि से कहते हैं:-

"नहीं दूं भिक्षा मैं तुझ को भिक्षु जा अन्यत्र तू"
(क्योंकि-यह अन्न तो-)
जो वेदज्ञ ब्राह्मण हो, यज्ञार्थी व जितेन्द्रिय,
ज्योतिषादिक के ज्ञाता, धर्म के पारगामीय ॥७॥
स्व-पर आत्मा के उद्धारक, विप्र जो समर्थ हैं,
उनके अर्थ अन्न यह है, भिक्षो ! तू असमर्थ है। ८॥

ध तपस्वी मुनि.-

न जानो वेदक मुख को, न जानो क्या है यज्ञमुख ?
न जानो नक्षत्र के मुख को जानो नहीं क्या धर्ममुख ? ॥११॥
कौन समर्थ उद्धारक है ? स्व-पर आत्मा का कहो ?
जानो नहीं तुम्हीं कुछ भी, जानते हो यदि तो कहो ॥१२॥

घोष विप्र-(प्रश्नों से प्रभावित होकर जिज्ञासावृत्ति में)

वेदों के मुख को मुनि कहो, यज्ञों के मुख को कहो,
नक्षत्रों का मुख क्या है ? धर्मों के मुख को कहो ॥१३॥

संयम हेतु भिक्षार्थी, रसलोलुपी ना रहे ।
अनासक्त गृहस्थी से त्यागी, हो ब्राह्मण उसको कहे ॥२८॥
त्यागे पूर्व संजोगों, त्यागे बांधव नात जात ।
गृद्ध होवे न भोगों में, होवे ब्राह्मण जग विख्यात ॥२९॥
वेद के नाम पर हिंसा, पाप कर्म करे यदि ।
तीव्र कर्मों के बन्धन में, फंस जाये असंयति ॥३०॥
न साधु केश मुंडन से न ॐ उच्चार से द्विज ।
वनवास से नहीं मुनि, वल्कल' से नहीं तापस ॥३१॥
समता से बने साधु, ब्राह्मण हो ब्रह्मचर्य से ।
तापस तप करके होवे, मुनि होते है ज्ञान से, ॥३२॥
(व्यवस्था ठीक वर्णों की, कर्म से हो नहीं जन्म से;
यथा गुणां तथा कर्मा, समझो वर्ण हो कर्म से.)
ब्राह्मण कर्म से होवे, क्षत्रिय कर्म से,
वैश्य भी कर्म से होवे, होवे शूद्र स्व कर्म से ॥३३॥
सर्व कर्म विनिर्मुक्त, मोक्षार्थ परिश्रम करे,
वही स्नातक है सच्चा, ब्राह्मणोत्तम उसको कहे ॥३४॥
गुण धारक ऐसे विप्र, अपना अरु पर आत्म का,
समर्थ उद्धारक जो है, ब्राह्मणों परमात्म का ॥३५॥

विजयघोष विप्र—(विनम्र भाव से नतमस्तक होकर)—
"ब्राह्मणत्व कहा यथार्थ, धन्य धन्य मुनि अहो !"
आप है वेद के ज्ञाता, यज्ञ याजक आप हो,
ज्योतिषादिक अंगों के, ज्ञाता विद्वान् आप हो, ॥३८॥

आप ही पारगामी हैं, धर्मों का अर्थ महामुनि !

स्व-पर कल्याण में बलवान्, कृपया भिक्षा अहो मुनि ! ३९

[ज]यघोष तपस्वी मुनि–

[भि]क्षा से नहीं काम मुझको, संयम का है प्रयोजन;

[भ]यंकर घोर संसार में, भटको नहीं यह प्रयोजन ॥४०॥

[भो]गी आसक्त भोगों में, अभोगी अनासक्त हैं:

[भो]गी संसार में भ्रमता, अभोगी संसारमुक्त हैं ॥४१॥

[गी]ला या सूखा गोला, भित्ति पर ज्यों फेंकते।

[गी]ला चोंटे नहीं सूखा, भोगी ऐसे ऐंठते ॥४२॥

[का]मी दुर्बुद्धि जगत में, फंस जात संसार में।

[वि]रक्त जैसे जलकमल, आनंद ले अवतार में ॥४३॥

× × × ×

विजयघोष हर्षित हुआ, सुनी जयघोष की वाणी,

संयम लिया जयघोष से, वीतराग धर्म सुन वाणी ॥४४॥

पूर्व कर्म सब क्षय किये, संयम तप अपनाये,

विजयघोष जयघोषजी, उत्तम सिद्धि पाये ॥४५॥

४ जातिवाद-विरोध—

न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो ।
समयाए समणो होइ, बम्भचेरेण बम्भणो ।
नाणेण उ मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ।
उ० अ० २५ गा. ३१-३२
कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ।।३३।।

५ काल का क्या विश्वास—

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वऽत्थि पलायणं ।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ।।
उ० अ० १४ गा. २७
जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ ।
जाव इन्दिया न हायन्ति, ताव धम्मं समायरे ।।

४ जातिवाद-विरोध-

साधु न लुञ्चन-मात्र से, द्विज न रटे ॐकार।
होत न मुनि वनवास से, तापस चीवर-धार॥
साधु होत समभाव से, ब्राह्मण ब्रह्म विहार।
तप से तापस होत है, मुनि हो मनन-विचार॥
कर्म से ब्राह्मण होवे, क्षत्रिय होवे कर्म से,
कर्म से वैश्यजन होवे, शूद्र होवे कर्म से॥

उत्त० अ० २५ गा. ३१-३२-३३

५ काल का क्या विश्वास-

जिसकी मैत्री मौत से, जिसे अमरता-आस।
छूट सके जो मृत्यु से, करे काल-विश्वास॥

उ० १४-२७

जरा न जब तक दुःख दे, बढ़े न तन में व्याधि।
मंत्री इन्द्रियाँ क्षीण हों, सेवो धर्म-समाधि॥

दश० ८-३६

४ अडोल निश्चय

(राग—कालिगड़ अथवा केदार-त्रिताल)

तू तो राम सुमर जग लड़वा दे ॥२॥

कोरा कागज काली स्याही, लिखत-पढ़त वाको पढ़वा दे
हाथी चलत हं अपनी गति में कुतर भुंकत वाको भुंकवा दे
कहत कबीरा सुनो भाई साधो ! नरक पचत वाको पचवा दे

• • •

निज आत्म विकास करूं मैं सदा, पलपल मे घटी घड़ीघड़ी तत्परत
निज साध्य में मुझको न बाधा कडे, तन मन वाचा नहीं विघ्न क
कर्म-प्रकृति सब दूर करूं अरु, आत्म स्वरूप में यत्न धरूं ॥ निज

* • *

असारता

इस तन धन को कौन बड़ाई ।
देखत नयनों में मिट्टी मिलाई ॥

अपने खातिर महल बनाया, आप ही जाकर जंगल सोया । इस०
हाड़ जले जैसे लकड़ी की मोली, बाल जले जैसे घास की पोली ।
कहत कबीरा सुन मेरे गुनिया, आप मुए पिछे डूब गई दुनिया ॥

— मातृ-भक्ति —

हैं विश्व की सर्व स्त्रियां जनेता
भरी हुई वत्सलता अनोखी;
मां-बुद्धि से जो लखता स्त्रियों को
गृहस्थ वह साधक ब्रह्मचारी ।

सर्व जगत का सन्नारीगण, अतिरत वत्सल रस बरसो।
मातृभाव से रोमरोम में व्याप्त अमृतमय हो विलसो॥
जब देखूं तब बालभाव से, मन मति प्राण और यह तन।
उर में रस एकत्व चरण में लोटें करने को चुम्बन॥

* * *

५ जीवन विकासक्रम

वह अवसर होगा कदा, बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ।
छेद बंध सम्बन्ध का, विचरूं महाजन-पन्थ॥१॥
उदासीनता हो सदा, सब पदार्थ के मांही।
देह गेह चारित्र की, मूर्छा उसमें नाहिं॥२॥
दर्शन-मोह व्यतीत हो, देह भिन्न "मैं" ज्ञान।
चरित मोह के नाश से, शुद्ध रूप का ध्यान॥३॥
संक्षिप्त योग से आत्म की, स्थिरता तन-पर्यन्त।
उपसर्गों से हो नहीं, उस स्थिरता का अंत॥४॥
योग वृत्ति संयम हित जिन-आज्ञा-आधीन।
अन्त दशा में हो वही निजस्वरूप में लीन॥५॥

* * *

६ ब्रह्मचर्य

लखकर के नव यौवना लेश न विषय निदान।
गिने मात-भगिनी समा ते भगवान् समान॥
जग के सर्व विकारका नारी नायक रूप।
यह छोड़ा, छोड़ा सभी, है यह शोक-स्वरूप॥
एक विषय जीता अगर, जीता सब संसार।
... नृप हो स्वयं, दल पुर सब अधिकार॥

डोल निश्चय

लगत अथवा केदार-त्रिताल)

तू तो राम सुमर जग लड़वा दे ॥२॥
कोरा कागज काली स्याहो, लिखत-पढ़त वाको पढ़वा दे।
हाथी चलत है अपनी गति में कुतर भूंकत वाको भूंकवा दे ॥
कहत कबीरा सुनो भाई साधो ! नरक पचत वाको पचवा दे ॥

: : :

निज आत्म विकास करूं मैं सदा, पलपल में घटी घडीघडी तत्परता
निज साध्य में मुझको न बाधा कडे, तन मन वाचा नहीं विघ्न करे
कर्म-प्रकृति सब दूर करूं अरु, आत्म स्वरूप में यत्न धरूं ॥ निज

* : *

असारता

इस तन धन की कौन बड़ाई ।
देखत नयनों में मिट्टी मिलाई ॥
अपने खातिर महल बनाया, आप ही जाकर जंगल सोया। इस
हाड जले जैसे लकडी की मोलो, बाल जले जैसे घास की पोलो
कहत कबीरा सुन मेरे गुनिया, आप मुए पिछे डूब गई दुनिया।

— मातृ-भक्ति —

है विश्व की सर्व स्त्रियां जनेता
भरी हुई वत्सलता अनोखी;
मां-बुद्धि से जो लखता स्त्रियों को
गृहस्थ वह साधक ब्रह्मचारी ।